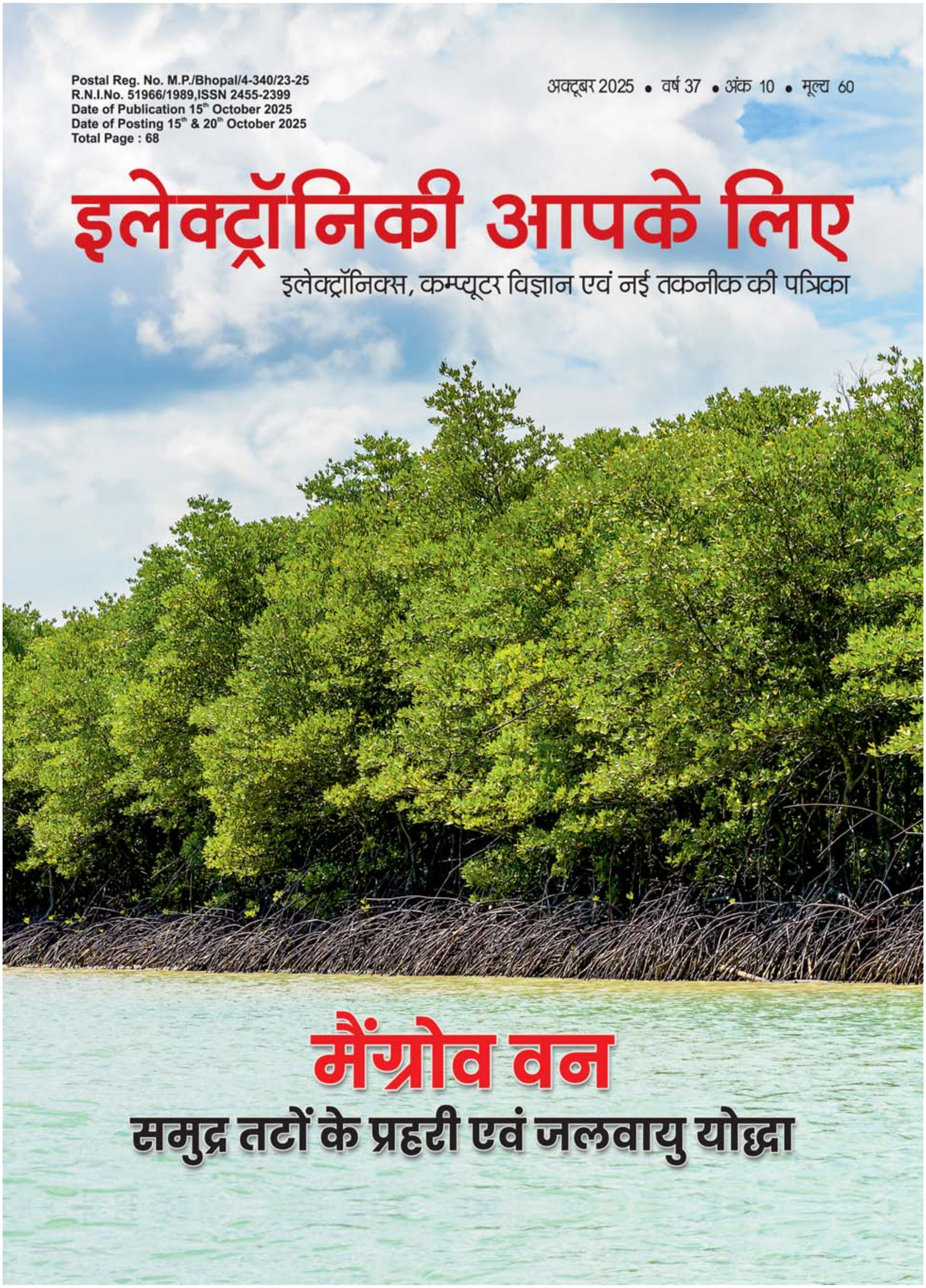
Postal Reg. No. M.P./Bhopal/4-340/23-25
R.N.I.No. 51966/1989,ISSN 2455-2399
Date of Publication 15th October 2025
Date of Posting 15th & 20th October 2025
Total Page : 68

अक्टूबर 2025 • वर्ष 37 • अंक 10 • मूल्य 60

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका



मैंग्रोव वन

समुद्र तटों के प्रहरी एवं जलवायु योद्धा

www.rntu.ac.in

RNTU Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™

MADHYA PRADESH, RAISEN

RECOGNIZED BY: UGC | ACCREDITED BY: AICTE | NCTE | ICAR | PCI | BCI | MP PARAMEDICAL COUNCIL | MP NURSING COUNCIL | MEMBER OF AIU

University Category Rank Band 151-200 nirf 2024

RECOGNISED FOR 6 YEARS IN A ROW

EMPOWERING EXCELLENCE

FOR THE LAST 15 YEARS

OUR ALUMNI WALK THE TALK

UNLOCKING POTENTIAL



Vivek Sagar | Olympic Bronze Medalist | Vice-Captain In Indian Hockey Team



Wanderlooms Incubated at AIC-RNTU | **₹50 Lakh** funding at Shark Tank India



Megha Parmar | 1st Woman (M.P.) on **Mt. Everest**



Sanskriti Gupta Mumbai Indians | **Women's IPL** T20, 2025



Karan Pariyar | Finalist, Dance Deewane (Colors TV)



Neha Pandit RNTU Alumna | **₹65 LPA** at EY

- **600+** Companies Visited
- **6500+** Students Placed
- **250+** Placement Drives

ADMISSIONS OPEN 2025-26

- Engineering & Technology
- Management
- Education
- Law
- Science
- Commerce
- Dramatic Arts
- Medical Sciences
- Humanities & Liberal Arts
- Agriculture
- Tagore Institute of Rural Management (TIRM)
- B.Voc.
- M.Voc.

*Ph.D in selected subjects through separate entrance tests

| 17 COEs for Research and 65 patents | Trained 30+ future Olympic medal winners | Incubated 137+ future unicorns at AIC-RNTU | Promoted art & culture in 50+ countries at Vishwarang |

No. 1 MULTI DISCIPLINARY UNIVERSITY OF MADHYA PRADESH

Recruiters

accenture, Tech Mahindra, tcs, adani, L&T, ICICI Bank, DAIKIN, genpact, BOSCH, wipro, amazon, Jio, airtel, AISECT LEARN

0755-2700413, +91-9319866685, 8770884536, 8770179841, 6264048758, 9753012107

Rabindranath Tagore University Campus: BHOPAL - Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, M.P., Ph.: +91-7552700401, 2700447

City Office: 3rd Floor, Samath Complex, Opposite to Board Office, Link Road No. 1, Shivaji Nagar, Bhopal, Ph.: +91-755-4289606

Scan for more details

RNI No. 51966/1989
ISSN 2455-2399
www.electroniki.com
अक्टूबर 2025
वर्ष 37, अंक 10

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान, रामेश्वर गुरु पुरस्कार, भारतेन्दु पुरस्कार तथा सारस्वत सम्मान से सम्मानित



प्रधान संपादक
संतोष चौबे

कार्यकारी संपादक
डॉ.विनीता चौबे

सह-संपादक
मोहन सगोरिया

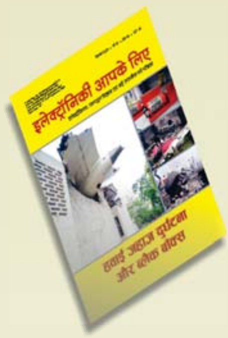
उप-संपादक
रवीन्द्र जैन
डॉ. मनीष श्रीवास्तव

स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक
डॉ. सिद्धार्थ चतुर्वेदी

प्रबंधक
ज्योति रघुवंशी

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए 375

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका









पत्र व्यवहार का पता :

संपादक
'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए'
आईसेक्ट लिमिटेड, मुख्यालय स्कोप कैम्पस,
एन.एच.–12, होशंगाबाद रोड,
मिसरोद, भोपाल–462047
फोन : 0755-2700466 (डेस्क),
2700401 (रिसेप्शन)
e-mail : electronikiaisect@gmail.com website : www.electroniki.com

मूल्य : 40/-
(आईसेक्ट समूह के विद्यार्थियों के लिए)

इस अंक का मूल्य : 60/-

शुल्क :
वार्षिक रजिस्टर्ड डाक खर्च सहित : 960/-
त्रैवार्षिक रजिस्टर्ड डाक खर्च सहित : 2800/-
पंचवार्षिक रजिस्टर्ड डाक खर्च सहित : 4500/-
आजीवन : 10,000/-
बैंक अकाउंट नं. : 35924450543
IFSC Code : SBIN0003867
State Bank of India, Mahavir Nagar, Bhopal (M.P.)

विज्ञापन एवं क्रय के लिए संपर्क :
महीप निगम
आईसेक्ट मुख्यालय स्कोप कैम्पस
एन.एच.-12 होशंगाबाद रोड,
मिसरोद, भोपाल (म.प्र.)
मोबाइल : 8818883165
ई–मेल : mahip@aisect.org

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखक के हैं। उनसे संपादक की सहमति होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका के भीतर उपयोग किये गये चित्र गूगल से साभार लिए गये हैं। सभी विवादों का निबटारा भोपाल अदालत में किया जायेगा।

स्वामी, आईसेक्ट लिमिटेड के लिये प्रकाशक व मुद्रक सिद्धार्थ चतुर्वेदी द्वारा आईसेक्ट लिमिटेड (आईसेक्ट पब्लिकेशन), प्लॉट नं. 10, सेक्टर सी, इंडस्ट्रीयल एरिया, बगरौदा, जिला भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित व आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस एन.एच.-12 होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित।
प्रधान संपादक- **संतोष चौबे**।



अनुक्रम

आलेख

समुद्री विज्ञान

स्तम्भ

विज्ञान कथा

विज्ञान कविता

हमारी प्रयोगशालाएं

पुस्तक समीक्षा



दिल्ली में लैंडफिल गैसें बन रही हैं मुसीबत

प्रमोद भार्गव

दिल्ली की आबोहवा खराब करने में कचरों के ऐसे ठिकाने खतरनाक साबित हो रहे हैं, जिनसे लैंडफिल गैसें हवा और जल स्रोतों को एक साथ प्रदूषित करते हैं। दिल्ली समेत समूचे राजनीति क्षेत्र में अनेक लैंडफिल ठिकाने हैं। इसलिए इस पूरे क्षेत्र में कचरे के इन ढेरों से फूटती लैंडफिल नामक शैतानी गैसों से एक बड़ी आबादी का जीना कठिन हो गया है। इन ठिकानों को हटाने और कचरे का वैज्ञानिक ढंग से निस्तारण करने के लिए विभिंन्न संस्थाएं राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण और सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा चुकी हैं, लेकिन अब तक नतीजा ढांक के तीन पांत ही रहा है। अब मौसम विभाग की तर्ज पर लैंडफिल ठिकानों पर 'अर्ली वार्निंग सिस्टम' जैसी व्यवस्था होगी। इस कचरे से उत्सर्जित होने वाली तीव्र ज्वलनशील मीथेन गैस को चिन्हित करने वाले डिटेक्टर भी लगाए जाएंगे। इन ठिकानों के तापमान पर भी निगरानी रखने के लिए 'नान कांटेक्ट इंफ्रारेड थर्मामीटर' लगाए जाएंगे। वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग (सीक्यूएम) ने इन साइटों पर आग लगने की घटनाओं को थामने और इससे होने वाले प्रदूषण की रोकथाम के लिए 8 सूत्रीय निर्देश भी जारी किए हैं। इन निर्देशों का पालन दिल्ली, हरियाणा, उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान सरकार को एनसीआर नगरों की सभी लैंडफिल साइटों पर इन निर्देशों का पालन करना होगा।

दिल्ली में गाजीपुर, भलस्वा तथा ओखला में लैंडफिल ठिकाने हैं। इनमें रोजाना हजारों टन कचरा डाला जाता है। इसके वैज्ञानिक ढंग से निस्तारण के कोई तकनीकी इंतजाम नहीं हैं। एनजीटी ने एक समिति का गठन कर उससे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के कचरे से बिजली पैदा करने की संभावना तलाशने को कहा था, लेकिन दिल्ली सरकार, दिल्ली प्रदूषण नियंत्रण समिति



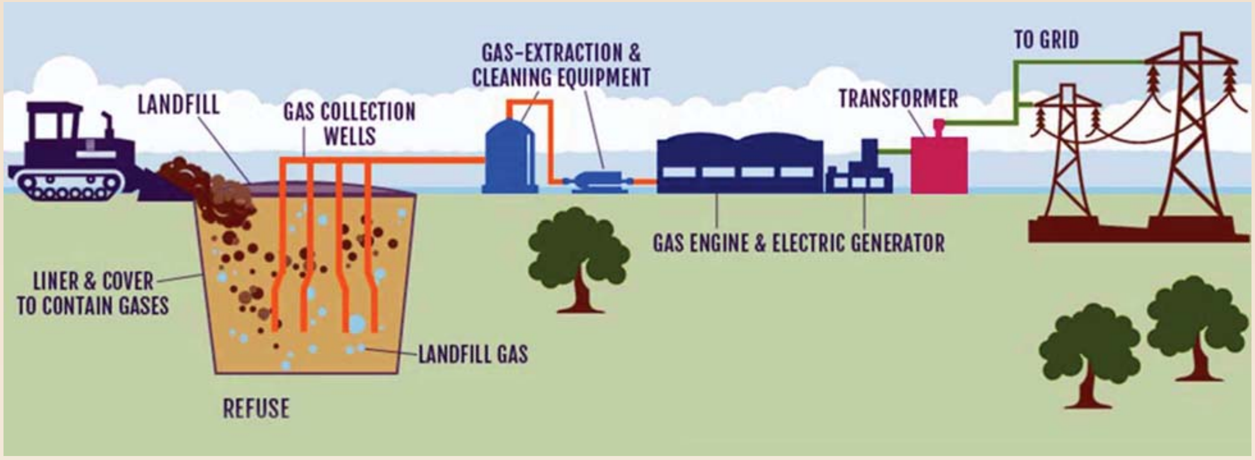
कचरे के सड़ने से बनने वाली इन बदबूदार गैसों को वैज्ञानिकों ने लैंडफिल गैसों के दर्जे में रखकर एक अलग ही श्रेणी बना दी है। दफन कचरे में भीतर ही भीतर जहरीला तरल पदार्थ जमीन की दरारों में रिसता है। यह जमीन के भीतर रहने वाले जीवों के लिए प्राणघातक होता है। भूगर्भ में निरंतर बहते रहने वाले जल-स्रोतों में मिलकर यह शुद्ध पानी को जहरीला बना देता है। गंधक के अनेक जीवाणुनाशक यौगिक भूमि में फैलकर उसकी उर्वरा क्षमता को नष्ट कर देते हैं।

और केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड किसी परिणाम तक नहीं पहुंच पाए। इन ढेरों में अचानक आग भी लग जाती है, इस कारण समूचे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में वायु प्रदूषण जानलेवा साबित होने लगता है। पर्यावरणीय मामलों के प्रमुख वकील गौरव बंसल का कहना है कि ये लैंडफिल कचरों के ठिकाने नहीं हैं। क्योंकि ऐसे ठिकानों के लिए विशेष डिजाइन और कायदे-कानून का प्रावधान है। कचरा डालने से पहले इन मैदानों में मिट्टी, प्लास्टिक, जैव और जैव-चिकित्सा जैसे कचरे को अलग किया जाता है। जबकि इन ठिकानों पर ऐसा कुछ भी नहीं होता है। इसलिए ये ठिकाने वेस्ट डंपिंग ग्राउंड बनकर रह गए हैं। दरअसल मीथेन गैस अत्यधिक ज्वलनशील गैस है। अन्य स्रोतों के अलावा लैंडफिल ठिकाने पर जमा जैविक कचरे के विघटित होने से मीथेन गैस का उत्सर्जन होता है। इस गैस में रंग और गंद नहीं होते है। इस कारण इसके रिसाव का पता नहीं चलता है। माना जाता है कि हवा में 5 से 15 प्रतिशत की सांद्रता से भी आग लग सकती है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के पूर्व अपर निदेशक डॉ. एस.के. त्यागी का कहना है कि मीथेन ग्रीन हाउस गैस है। उपग्रह से इसकी निकली छवि को देखा जा सकता है। इसे ट्रेप कर इसका उपयोग करने पर काम होना चाहिए। लेकिन सबसे ज्यादा जरूरी है कि महानागरों में इस तरह के बड़े कचरे के ढेरों को एकत्रित करने से रोका जाए। इसके लिए कचरे को अलगाने, उसे रिसाइकल करने एवं उससे खाद एवं ईंधन तैयार करने पर विचार होना चाहिए।

दरअसल लैंडफिल गैसें उन स्थलों से उत्सर्जित होती हैं, जहां गड्ढों में शहरी कचरा भर दिया गया हो। इस कचरे में औद्योगिक कचरा भी शमिल हो तो इसमें प्रदूषण की भयानकता और बढ़ जाती है। नए शोधों से पता चला है कि नियम-कानूनों को ताक पर रखकर लापरवाही से तैयार किए भूखंडों पर खड़ी इमारतों में चल रहे सूचना तकनीक के कारोबार में प्रयुक्त चांदी, तांबा और पीतल के कल-पूर्जों की सेहत लैंडफिल गैसों के संपर्क में आकर बिगड़ जाती है। इनका हमला निर्जीव यांत्रिक उपकरणों पर ही नहीं मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल असर डालता है। हमारे देश की महानगर पालिकाएं और भवन-निर्माता गड्ढो वाली भूमि के समतलीकरण का बड़ा आसान उपाय इस कचरे से खोज लेते हैं। रोजाना घरों से निकलने वाले कचरे और इलेक्ट्रॉनिक कचरे से गड्ढों को पाटने का काम बिना किसी रासायनिक उपचार के कर दिया जाता है। इस मिश्रित कचरे में मौजूद विभिन्न रसायन परस्पर संपर्क में आकर जब पांच-छह साल बाद रासायनिक क्रियाएं करते हैं, तो इसमें से जहरीली लैंडफिल गैसें पैदा होने लगती हैं। इनमें हाइड्रोजन पेरोक्साइड, हाइड्रोजन ऑक्साइड, मीथेन, कार्बन मोनोऑक्साइड और सल्फर डाइऑक्साइड इत्यादी होती हैं।

कचरे के सड़ने से बनने वाली इन बदबूदार गैसों को वैज्ञानिकों ने लैंडफिल गैसों के दर्जे में रखकर एक अलग ही श्रेणी बना दी है। दफन कचरे में भीतर ही भीतर जहरीला तरल पदार्थ जमीन की दरारों में रिसता है। यह जमीन के भीतर रहने वाले जीवों के लिए प्राणघातक होता है। भूगर्भ में निरंतर बहते रहने वाले जल-स्रोतों में मिलकर यह शुद्ध पानी को जहरीला बना देता है। गंधक के अनेक जीवाणुनाशक यौगिक भूमि में फैलकर उसकी उर्वरा क्षमता को नष्ट कर देते हैं।

आधुनिक जीवन शैली बहुत अधिक कचरा पैदा करती है। इसलिए भारत ही नहीं, दुनिया के ज्यादातर विकसित और विकासशील देश कचरे को ठिकाने लगाने की



समस्या से जूझ रहे हैं। लेकिन ज्यादातर विकसित देशों ने समझदारी बरतते हुए इस कचरे को अपने देशों में ही नष्ट कर देने की कार्यवाही पर रोक लगा दी है। दरअसल पहले इन देशों में भी इस कचरे को धरती में गड्ढे खोदकर दफना देने की छूट थी। लेकिन जिन-जिन क्षेत्रों में यह कचरा दफनाया गया, उन-उन क्षेत्रों में लैंडफिल गैसों के उत्सर्जन से पर्यावराण बुरी तरह प्रभावित होकर खतरनाक बीमारियों का जनक बन गया। जब ये रोग लाइजाज बीमारियों के रूप में पहचाने जाने लगे तो इन देशों का शासन-प्रशासन जागा और उसने कानून बनाकर औद्योगिक व घरेलू कूड़े-कचरे को अपने देश में दफन करने पर सख्त प्रतिबंध लगा दिए। तब इन देशों ने इस कचरे को ठिकाने लगाने के लिए लाचार देशों की तलाश की और सबसे लाचार देश निकला भारत। दुनिया के 105 से भी ज्यादा देश अपना औद्योगिक कचरा भारत के समुद्री तटवर्ती इलाकों में जहाजों से भेजते हैं। इन देशों में अमेरिका, चीन, ब्राजील, आस्ट्रेलिया, जर्मनी और ब्रिटेन प्रमुख हैं।

नेशनल एनवायरमेंट इंजीनियारिंग रिसर्च इंस्टीयूट के एक शोध पत्र के अनुसार वर्ष 1997 से 2005 के बीच भारत में प्लास्टिक कचरे के आयात में 82 फीसदी की बढ़ोत्तरी हुई है। ये आयात देश में पुनर्शोधन व्यापार को बढ़ावा देने के बहाने किया जाता है। इस क्रम में विचारणीय पहलू यह है कि इस आयातित कचरे में खतरनाक माने जाने वाले ऑर्गेनो-मरक्यूरिक यौगिक निर्धारित मात्रा से 1500 गुना अधिक पाए गए हैं, जो कैंसर जैसी लाइजाज और भयानक बीमारी को जन्म देते हैं। सर्वोच्च न्यायालय की मुल्याकांन समीति के अनुसार देश में हर साल 44 लाख टन कचरा पैदा होता है। ऑर्गेनाइजेशन फॉर कॉरपोरेशन एंड डवलपमेंट ने इस मात्रा को 50 लाख टन बताया है। इसमें से केवल 38.3 प्रतिशत कचरे का ही पुनर्शोधन किया जा सकता है, जबकि 4.3 प्रतिशत कचरे को जलाकर नष्ट किया जा सकता है। लेकिन इस कचरे को औद्योगिक इकाईयों द्वारा ईमानदारी से पुनर्षोधित न किया जाकर ज्यादातर जल स्रोतों में धकेल दिया जाता है।

कचरा भण्डारों को नष्ट करने के ऐसे ही फौरी उपायों के चलते एक सर्वे में पर्यावरण नियोजन एवं समन्वय संगठन ने पाया है कि हमारे देश के पेयजल में 750 से 1000 मिलिग्राम प्रति लीटर तक नाइट्रेट पानी में मिला हुआ है और अधिकांश आबादी को बिना किसी रासायनिक उपचार के पानी प्रदाय किया जा रहा है, जो लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा असर डालता है। एप्को के अनुसार नाइट्रेट बढ़ने का प्रमुख कारण औद्योगिक कचरा, मानव व पशुमल है।

ऐसे ही कारणों से लैंडफिल गैंसों का उत्सर्जन बढ़ रहा है। नतीजतन बच्चों में ब्लू बेबी सिंड्रोम जैसी बीमारी फैल रही है। इन गैसों के आंख, गले और नाक में स्थित 'लेश्मा परत के संपर्क में आने से दमा, सांस, त्वचा और एलर्जी की बिमारियां बढ़ रही हैं। कचरा मैदानों के ऊपर बने भवनों में रहने वाले लोगों में से, खास तौर से महिलाओं में मूत्राशय का कैंसर होने की आशंका बढ़ जाती है। लैंडिफल गैंसें इन खतरों को चार गुना बढ़ा देती हैं। यह प्रदूषण गर्भ में पल रहे शिशु को भी प्रभावित करता है।

नियमानुसार कचरा मैदानों में भवन निर्माण का सिलसिला पंद्रह साल बाद होना चाहिए। इस लंबी अवधि में कचरे के सड़ने की प्रक्रिया पूर्ण होकर लैंडफिल गैसों का

उत्सर्जन भी समाप्त हो जाता है और जल में घुलनशील तरल पदार्थ का बनना भी बंद हो जाता है। लेकिन प्रकृति की इस नैसर्गिक प्रक्रिया के पूर्ण होने से पहले ही हमारे यहां जमीन के समतल होने के तत्काल बाद ही आलीशान इमारतें खड़ी करने का सिलसिला शुरू कर देते हैं। जिसका नतीजा उस क्षेत्र में रहने वाली आबादी और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को भुगतना होता है।

अब इस औद्योगिक व घरेलू कचरे को नष्ट करने के प्राकृतिक उपाय भी सामने आ रहे है। हालांकि हमारे देश के ग्रामीण अंचलों में घरेलू कचरे व मानव एवं पशु मल-मूत्र को घर के बाहर ही घरों में प्रसंस्करण करके खाद बनाने की परंपरा रही है। इसके चलते कचरा महामारी का रूप धारण कर जानलेवा बीमारियों का पर्याय न बनते हुए खेत की जरूरत के लिए ऐसी खाद में परिवर्तित होता है, जो फसल की उत्पादकता व पौष्टिकता बढ़ाता है। अब एक ऐसा ही अद्वितीय व अनूठा प्रयोग औद्योगिक व घरेलू जहरीले कचरे को नष्ट करने में सामने आया है। अभी तक हम केंचुओं का इस्तेमाल खेतों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए वर्मी कंपोस्ट खाद के निर्माण में करते रहे हैं। हालांकि खेतों की उर्वरा क्षमता बढ़ाने में केंचुओं की उपयोगिता सर्वविदित है, पर अब औद्योगिक कचरे को केंचुओं से निर्मित वर्मी कल्चर से ठिकाने लगाने का सफल प्रयोग हुआ है। अहमदाबाद के निकट मुथिया गांव में एक पायलट परियोजना शुरू की गई है। इसके तहत जमा 60 हजार टन कचरे में 50 हजार केंचुए छोड़े गए थे। चमत्कारिक ढंग से केंचुओं ने इस कचरे का सफाया कर दिया। फलस्वरूप यह स्थल पूरी तरह प्राकृतिक ढंग से जहर के प्रदूषण से मुक्त हो गया। लैंडफिल गैसों से सुरक्षा के लिए कचरे को नष्ट करने के कुछ ऐसे ही प्राकृतिक उपाय अमल में लाने होंगे, जिससे कचरा मैदानों में बसी आबादी के लोग और इलेक्ट्रॉनिक उपकरण सुरक्षित रहें।

वरिष्ठ लेखक-पत्रकार एवं विज्ञान संचारक। विज्ञान आधारित उपन्यास, कहानी संग्रह तथा कई पुस्तकें प्रकाशित। उपन्यास 'दशावतार' वैज्ञानिक संदर्भों के कारण चर्चित। वन्य-जीवन पर दस लघु-पुस्तिकाएं भी प्रकाशित। प्रतिष्ठित सम्मानों से सम्मानित।

pramod.bhargava15@gmail.com

जलवायु परिवर्तन के बढ़ते खतरे



डॉ. दीपक कोहली

जलवायु परिवर्तन एक गंभीर और वैश्विक मुद्दा है जो हमारे पर्यावरण, मौसम और जीवनशैली पर गहरा प्रभाव डालता है। भारत भी एक गंभीर होते जलवायु संकट का सामना कर रहा है। पिछले दो दशकों में जलवायु आपदाओं से 79.5 अरब डॉलर के आर्थिक नुकसान तथा अनियमित मानसून के कारण पूरे क्षेत्र अस्थिर होने के साथ, देश बढ़ते समुद्र तल, चरम मौसमी घटनाओं और कृषि व्यवधान जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है। मुंबई, चेन्नई और कोच्चि जैसे तटीय शहरों के वर्ष 2040 तक आंशिक रूप से जलमग्न होने का खतरा है, जबकि सुंदरबन के मैंग्रोव वन वर्ष 2100 तक अपने 80 प्रतिशत क्षेत्र को खो सकते हैं, जिससे जैवविविधता और प्राकृतिक आपदाओं के बफर क्षेत्रों , दोनों को खतरा होगा। उत्तराखंड में हाल ही में आई बाढ़, वायनाड में भूस्खलन और हिंद महासागर में चक्रवातों का तीव्र होना कोई मौसमी दुर्भाग्य नहीं, बल्कि जलवायु संबंधी तत्काल चेतावनी है जो यह मांग करती है कि भारत सतत् विकास के लिये अधिक जलवायु-अनुकूल और समुत्थानशील दृष्टिकोण अपनाए।

भारत बाढ़ के साथ-साथ लगातार बढ़ती भीषण हीट वेव से जूझ रहा है। अत्यधिक गर्मी की घटनाओं की आवृत्ति और तीव्रता, विशेष रूप से उत्तरी एवं मध्य भारत में, जन स्वास्थ्य, कृषि व ऊर्जा प्रणालियों के लिये खतरा बन रही है। वर्ष 2030 तक मुंबई, दिल्ली और चेन्नई जैसे शहरों में हीट वेव के दिनों की संख्या दोगुनी हो जाएगी। दूसरी ओर, हाल ही में उत्तराखंड के उत्तरकाशी के धराली जैसे उच्च तुंगता पर बसे गाँवों में बादल फटने से फ्लैश फ्लड आ गई। गुजरात, राजस्थान और तमिलनाडु जैसे राज्य भीषण गर्मी एवं अत्यधिक वर्षा की दोहरी मार झेल रहे हैं तथा वर्ष 2030 तक 80 प्रतिशत से अधिक ज़िलों के इससे प्रभावित होने का अनुमान है।

भारत के तटीय क्षेत्र, जहाँ लगभग 17 करोड़ लोग रहते हैं, जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्र-स्तर में वृद्धि के प्रति अत्यधिक सुभेद्य हैं। इसका बुनियादी अवसंरचना, आजीविका और जैव विविधता पर असर पड़ेगा। मुंबई और चेन्नई जैसे शहरों को आसन्न खतरों का सामना करना पड़ रहा है। अध्ययनों के अनुसार, वर्ष 2100 तक, सबसे खराब स्थिति में, मुंबई



में समुद्र का स्तर 101.4 सेमी तक बढ़ सकता है, जिससे शहर का 22 प्रतिशत हिस्सा जलमग्न हो सकता है। जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग के कारण पिछले दो दशकों में पश्चिम बंगाल के सुंदरबन में 110 वर्ग किलोमीटर मैंग्रोव पारिस्थितिकी का ह्रास हुआ है, जिससे तटीय बाढ़ के प्रति भारत की सुभेद्यता और बढ़ गई है।

जलवायु परिवर्तन के कारण भारत का जल संकट गंभीर होता जा रहा है, जहाँ 60 करोड़ से अधिक लोग उच्च-से-चरम जल संकट का सामना कर रहे हैं। 1,700 घन मीटर की अंतर्राष्ट्रीय सीमा से नीचे प्रति व्यक्ति ताजे जल की वार्षिक उपलब्धता के साथ, भारत प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता के मामले में विश्व में 132वें स्थान पर है। यह देश को 'जल संकटग्रस्त' बनाता है। वर्ष 1950 और 2024 के दौरान, देश में प्रति व्यक्ति सतही जल उपलब्धता में 73 प्रतिशत की गिरावट आई है। भूजल का अत्यधिक दोहन इस संकट को और बढ़ा रहा है। भारत में अनुमानित भूजल ह्रास 122-199 अरब घन मीटर के बीच है।

जलवायु परिवर्तन से स्वास्थ्य पर बोझ बढ़ रहा है, गर्मी से संबंधित बीमारियों और वेक्टर जनित रोगों के मामलों में वृद्धि हुई है। भारत में वर्ष 2000-2004 और 2017-2021 के दौरान चरम गर्मी के कारण होने वाली मौतों में 55 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई। भारत के 49 प्रतिशत कार्यबल के बाहर कार्यरत होने के कारण, यह विशेष रूप से श्रमिकों और वृद्ध जनों जैसे कमज़ोर समूहों के लिये महत्त्वपूर्ण स्वास्थ्य जोखिम उत्पन्न करता है इसके अलावा, बढ़ते तापमान मच्छरों जैसे रोगवाहकों के आवास का विस्तार करते हैं, जिससे मलेरिया और डेंगू के प्रकोप बढ़ते हैं।

जलवायु परिवर्तन भारत की ऊर्जा सुरक्षा के मुद्दों को और जटिल बना रहा है, बढ़ते तापमान के कारण शीतलन की माँग एवं जलविद्युत उत्पादन पर दबाव पड़ रहा है हालाँकि भारत के पास महत्त्वाकांक्षी नवीकरणीय ऊर्जा लक्ष्य हैं, फिर भी देश अभी भी कोयले पर बहुत अधिक निर्भर है, जो ऊर्जा उत्पादन का 70 प्रतिशत हिस्सा है। हसदेव अरण्य जैसे पर्यावरणीय रूप से सुभेद्य क्षेत्रों सहित कोयला खनन पर ज़ोर, भारत की जलवायु प्रतिबद्धताओं को कमज़ोर करने का खतरा उत्पन्न करता है, जिससे एक सतत् ऊर्जा भविष्य की ओर संक्रमण कठिन हो जाता है।

भारत की अर्थव्यवस्था और खाद्य सुरक्षा के लिये महत्त्वपूर्ण कृषि क्षेत्र, बदलते मौसम पैटर्न का खामियाज़ा भुगत रहा है।

अनुकूलन उपायों को न अपनाए जाने की स्थिति में, भारत में वर्षा आधारित चावल की पैदावार वर्ष 2050 में 20 प्रतिशत और गेहूँ की पैदावार 1 प्रतिशत तक कम होने का अनुमान है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन से वर्ष 2050 और 2080 के परिदृश्यों में खरीफ मक्का की पैदावार में क्रमशः 18 और 23 प्रतिशत की कमी आने का अनुमान है।

भारत में जलवायु परिवर्तन का आर्थिक प्रभाव गहरा है, वर्ष 1998 और 2017 के दौरान अनुमानित 79.5 अरब डॉलर का नुकसान हुआ है। जलवायु परिवर्तन के कारण भारत को वर्ष 2100 तक अपने सकल घरेलू उत्पाद का 3-10 प्रतिशत वार्षिक नुकसान हो सकता है। जलवायु अनुकूलन पर एक सुसंगत राष्ट्रीय रणनीति का अभाव इन नुकसानों को और बढ़ा देता है।

व्यापक जलवायु कार्यढाँचों के बावजूद, भारत की जलवायु-परिवर्तन कार्रवाई खंडित क्रियान्वयन, प्रशासन के अतिव्यापन और अपर्याप्त संसाधन वाले नियामकों द्वारा लगातार कमज़ोर होती जा रही है, जिसके परिणाम स्वरूप





'नीति-व्यवहार' में लगातार अंतर बना हुआ है। नवीकरणीय ऊर्जा के लिये भारत के अथक प्रयास को नवीन कोयला निवेशों और लंबे समय तक निर्भरता के कारण कमज़ोर किया जा रहा है, जो दीर्घकालिक डीकार्बोनाइज़ेशन लक्ष्यों के विरुद्ध है। सरकार ने वर्ष 2032 तक 80 गीगावाट नई कोयला-आधारित क्षमता जोड़ने की योजना को मंजूरी दी है और कोयले के उपयोग को चरणबद्ध रूप से समाप्त करने की कोई समय-सीमा नहीं बताई है। इसके अलावा, वन (संरक्षण) संशोधन विधेयक, 2023 के संशोधनों ने वनों की कटाई के विरुद्ध विधिक सुरक्षा को कमज़ोर कर दिया है, जिससे शमन प्रयासों पर और भी अधिक असर पड़ा है।

भारत का आर्थिक विकास का लक्ष्य प्रायः जलवायु शमन उद्देश्यों से असंगत होता है। औद्योगीकरण और बुनियादी अवसंरचना के विकास पर सरकार का ध्यान कभी-कभी ऐसी नीतियों की ओर ले जाता है जो पर्यावरणीय सुरक्षा उपायों को कमज़ोर करती हैं। उदाहरण के लिये, ग्रेट निकोबार द्वीप परियोजना को वर्ष 2024 में अपर्याप्त जन सुनवाई और जैवविविधता जोखिमों की रिपोर्टों के बीच मंजूरी दी गई, जो पर्यावरणीय प्रभाव आकलन प्रक्रिया में प्रणालीगत खामियों को दर्शाती है। यह दृष्टिकोण विकासात्मक हितों को जलवायु-परिवर्तन कार्यवाही की तत्काल आवश्यकता के विरुद्ध खड़ा करता है, जिससे सतत् विकास पर चिंताएँ बढ़ती हैं।

भारत का ग्रीन क्रेडिट कार्यक्रम और कार्बन क्रेडिट योजनाएँ, हालाँकि नवीन हैं, पारदर्शिता एवं प्रभावशीलता के मामले में चुनौतियों का सामना करती हैं। ग्रीनवाशिंग का जोखिम, जहाँ कंपनियाँ पर्यावरणीय मानकों को पूरा करने का झूठा दावा करती हैं, अभी भी उच्च्च बना हुआ है। इसके अलावा, जहाँ सरकार का वनीकरण और वृक्षारोपण पर ध्यान कार्बन सिंक को बढ़ावा देने के उद्देश्य से है, वहीं हालिया रिपोर्टों में पाया गया है कि अधिकांश वन आवरण वृद्धि गैर-वन क्षेत्रों में हुई है, जिससे ऐसी पहलों के वास्तविक पर्यावरणीय प्रभाव पर संदेह उत्पन्न होता है ।

भारत के शहरी क्षेत्र, जो तेज़ी से बढ़ रहे हैं, में जलवायु परिवर्तन के बढ़ते प्रभावों का सामना करने के लिये समुत्थानशीलता का अभाव है। सरकार का स्मार्ट सिटी मिशन, महत्त्वाकांक्षी होने के बावजूद, सतत् शहरी नियोजन को पूरी तरह से एकीकृत करने में विफल रहने के लिय आलोचना का शिकार रहा है। भारतीय शहर नगरीय ऊष्म द्वीप, जल की कमी और खराब वायु गुणवत्ता से ग्रस्त हैं तथा शहरीकरण इन कमज़ोरियों को और बढ़ा देता है। कुछ प्रगति के बावजूद, विश्व के 10 सबसे प्रदूषित शहरों में से 6 भारत में हैं, जो अधिक आक्रामक शहरी जलवायु रणनीतियों की आवश्यकता को दर्शाता है।

जहाँ शमन पर मुख्य ध्यान दिया जाता है, वहीं विशेष रूप से सुभेद्य कृषि और जल-तनावग्रस्त समुदायों के लिये अनुकूलन एवं समुत्थानशक्ति-निर्माण उपायों को कम प्राथमिकता दी जाती है तथा उन्हें पर्याप्त धन नहीं मिलता है। अनुकूलन व्यय, हालाँकि वित्त वर्ष 2016 में सकल घरेलू उत्पाद के 3.7 प्रतिशत से बढ़कर वित्त वर्ष 2022 में 5.6



प्रतिशत हो गया है, वास्तविक ज़रूरतों से काफी कम है।अनुमान है कि भारत को जलवायु परिवर्तन अनुपालन मानकों को पूरा करने के लिये अपने उद्योगों को अनुकूलित करने हेतु वर्ष 2030 तक लगभग 85.6 ट्रिलियन रुपए की आवश्यकता होगी।

भारत को जीआईएस, उपग्रह डेटा और आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस का उपयोग करके ज़िला व उप-ज़िला स्तर पर हाई-रिज़ॉल्यूशन जलवायु भेद्यता मानचित्रण में निवेश करना चाहिये। हीटवेव, बाढ़ और सूखे के जोखिम के आधार पर क्षेत्रों का सूक्ष्म-क्षेत्रीकरण लक्षित हस्तक्षेपों को सक्षम करेगा। यह विस्तृत दृष्टिकोण राज्य कार्य योजनाओं के तहत विकेंद्रीकृत जलवायु-परिवर्तन हेतु नियोजन को मज़बूत करता है। आपदा मोचन कार्यढाँचों के साथ एकीकरण समुदाय-स्तरीय समुत्थानशीलता बढ़ाता है। यह प्रतिक्रियाशील मोचन कार्य की तुलना में सक्रिय, स्थान-विशिष्ट अनुकूलन को बढ़ावा देता है।

शहरी स्थानीय निकायों को प्रकृति-आधारित समाधान, पारगम्य सतहों और नीले-हरे बुनियादी अवसंरचना जैसे सिद्धांतों का उपयोग करके जलवायु-एकीकृत मास्टर प्लान अपनाना चाहिये। नगरीय ऊष्मा द्वीप शमन तकनीकों, जैसे परावर्तक सामग्री और ऊर्ध्वाधर उद्यानों के साथ शहरों का पुनर्निर्माण, भेद्यता को काफी कम कर सकता है। कम आय वाली बस्तियों पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिये, जो प्रायः सबसे अधिक प्रभावित होती हैं।

जलवायु-अनुकूल कृषि प्रणालियों को बढ़ावा देने के लिये संवेदनशील कृषि-जलवायु क्षेत्रों में कृषि-पारिस्थितिक गलियारे स्थापित किये जाने चाहिये। वर्षा आधारित क्षेत्रों में कृषि वानिकी, कदन्न-आधारित प्रणालियों एवं मृदा-कार्बन संवर्द्धन को अपनाने से खाद्य सुरक्षा व जलवायु बफर में सुधार होता है। ये क्षेत्र अनियमित मानसून और मरुस्थलीकरण के विरुद्ध समुत्थानशील बफर के रूप में कार्य करते हैं।

जलवायु-अनुकूल क्षेत्रों में सभी प्रमुख सार्वजनिक बुनियादी अवसंरचनाओं जैसे- सड़कों, बिजली लाइनों, रेलवे के लिये अनिवार्य समुत्थानशीलता ऑडिट को संस्थागत रूप दिया जाना चाहिये। जोखिम-आधारित इंजीनियरिंग मानदंडों का उपयोग करके, ये ऑडिट बाढ़, चक्रवातों और तापमान तनाव के जोखिम की पहचान कर उसे कम कर सकते हैं।पर्यावरणीय मंजूरी तंत्र में इस तरह के ऑडिट को शामिल करने से निवारक क्षमता में वृद्धि होती है। जलवायु-रोधी बुनियादी अवसंरचना के लिये सार्वजनिक निजी भागीदारी मॉडल का लाभ उठाने से वित्तपोषण में तेज़ी आ सकती है। इससे महत्त्वपूर्ण परिसंपत्तियों का जीवनचक्र समुत्थानशीलता सुनिश्चित होती है।

आपदा-प्रवण और दूरस्थ क्षेत्रों में सतत् ऊर्जा अभिगम सुनिश्चित करने के लिये हाइब्रिड सौर-पवन-जैव प्रणालियों का उपयोग करके समुदाय-प्रबंधित नवीकरणीय ऊर्जा क्लस्टरों को बढ़ावा दिया जाना चाहिये। ये प्रणालियाँ व्यवधान के प्रति संवेदनशील केंद्रीकृत ग्रिडों पर निर्भरता कम करती हैं। ऊर्जा सहकारी समितियों के माध्यम से तैनाती स्थानीय शासन और महिलाओं के नेतृत्व वाले उद्यमों को सशक्त बनाती है। शीत भंडारण और सिंचाई के साथ संयोजन कृषि में अनुकूलन क्षमता को बढ़ाता है। यह जलवायु-रोधी ग्रामीण ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करता है।

फ्लैश फ्लड, हिमनद झीलों के विस्फोट और सूखे के लिये पूर्वानुमान विश्लेषण के साथ वास्तविक काल जल-जलवायु चेतावनी प्रणालियों का विस्तार किया जाना चाहिये। डिजिटल पूर्वानुमान मॉडलों के साथ स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों का एकीकरण सामुदायिक जवाबदेही को बढ़ाता



है।राज्य आपदा प्राधिकरणों को मोबाइल अलर्ट, सायरन और सामुदायिक रेडियो के माध्यम से अंतिम-बिंदु संचार स्थापित करना चाहिये। यह सक्रिय जोखिम संचार निष्क्रिय पीड़ितों को सक्रिय प्रतिभागियों में बदल देता है। यह ज़मीनी स्तर पर समुत्थानशीलता को क्रियान्वित करता है।

युवाओं को सौर मरम्मत, जल संचयन, पर्यावरण-निर्माण और जैवविविधता निगरानी जैसे जलवायु-अनुकूल क्षेत्रों में प्रशिक्षित करने के लिये एक राष्ट्रीय हरित अनुकूलन कौशल मिशन शुरू किया जाना चाहिये। जलवायु-सुभेद्य क्षेत्रों को कौशल से जोड़ने से रोज़गार और समुत्थानशीलता दोनों सुनिश्चित होते हैं। आईटीआई और प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना जैसे कौशल मंचों में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना पर मॉड्यूल शामिल किये जाने चाहिये। इससे जलवायु चुनौतियों से निपटने के लिये तैयार भविष्य के लिये तैयार कार्यबल का निर्माण होता है। यह अनुकूली मानव पूंजी का निर्माण करता है।

जल-भूविज्ञान मानचित्रण पर आधारित जलभृत-स्तरीय प्रबंधन योजनाओं के साथ ग्राम-स्तरीय जल उपयोगकर्त्ता संघों को सशक्त बनाया जाना चाहिये। समुदाय-संचालित प्रबंधित जलभृत पुनर्भरण, स्थानीय वर्षा जल संचयन और जल बजट को बढ़ावा दिया जाना चाहिये। जल शक्ति अभियान और अटल भूजल योजना के साथ एकीकरण अभिसरण सुनिश्चित कर सकता है। यह कृषि और पेयजल को बनाए रखने वाले समुत्थानशील भूजल पारिस्थितिकी तंत्र को सक्षम बनाता है। यह जल-सामाजिक अनुबंधों में समुत्थानशीलता को आधार प्रदान करता है।

भारत को कर छूट, ग्रीन बॉण्ड और जलवायु बीमा जैसे वित्तीय साधनों के माध्यम से निम्न-कार्बन, जलवायु-अनुकूल परियोजनाओं में निवेश को प्रोत्साहित करके हरित वित्त के संचालन में तेज़ी लानी चाहिये। अनुकूलन और निर्माण गतिविधियों के वित्तपोषण हेतु एक सुदृढ़ कार्यढाँचा विकसित करने से व्यवसायों एवं सरकारों को स्थायी समाधानों में निवेश करने का अधिकार मिलेगा।जलवायु अनुकूलन परियोजनाओं में निजी क्षेत्र की भागीदारी के लिये एक अनुकूल नीतिगत वातावरण बनाने से वित्तपोषण की कमी को पूरा किया जा सकता है।

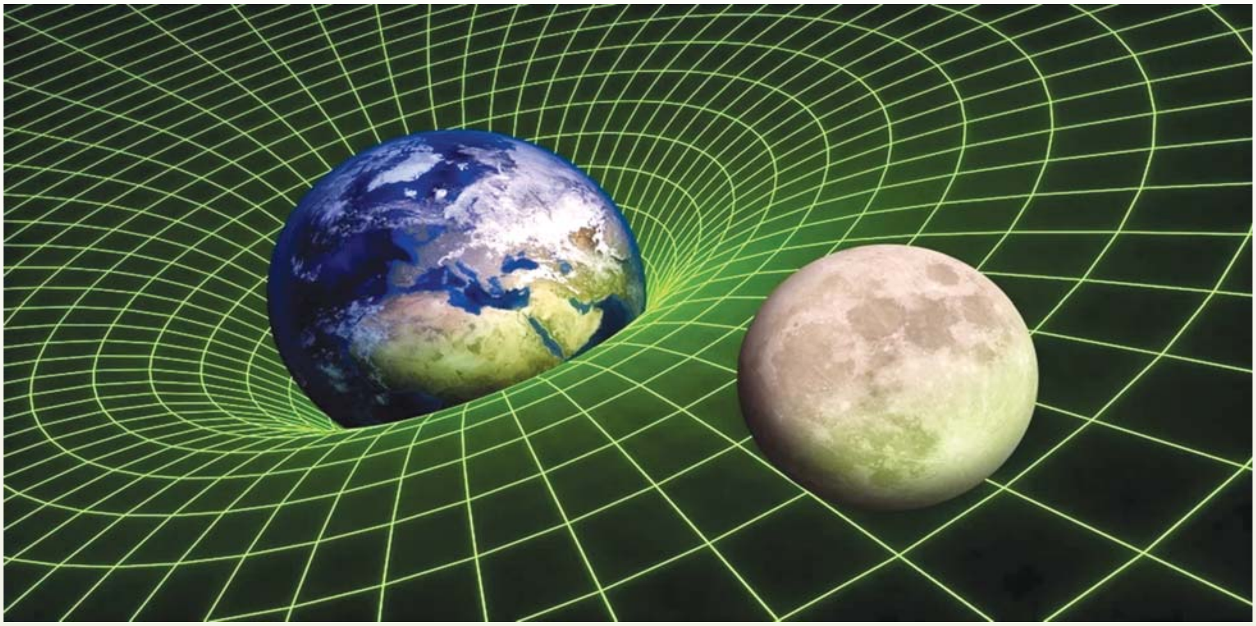
भारत को ग्रामीण से लेकर शहरी क्षेत्रों तक, समाज के सभी स्तरों पर जलवायु शिक्षा और जागरूकता कार्यक्रमों को प्राथमिकता देनी चाहिये, ताकि व्यक्तियों को जलवायु-अनुकूल कार्रवाई करने के लिये ज्ञान से सशक्त बनाया जा सके। इसमें स्कूली पाठ्यक्रम में जलवायु परिवर्तन को शामिल करना, सामुदायिक स्तर पर जागरूकता अभियान चलाना और स्थानीय नेताओं एवं नीति निर्माताओं के लिये क्षमता निर्माण कार्यशालाओं का आयोजन करना शामिल है। सामूहिक जिम्मेदारी को बढ़ावा देने और जलवायु-अनुकूल प्रथाओं को व्यापक रूप से अपनाने को सुनिश्चित करने के लिये एक सुविज्ञ जनता महत्त्वपूर्ण है।

भारत को अपने विकास पथ को सुरक्षित रखने के लिये जलवायु-अनुकूलन को राष्ट्रीय योजना का एक केंद्रीय आधार बनाने की आवश्यकता है, जिससे पंचामृत लक्ष्यों तथा सतत् विकास लक्ष्यों के साथ समन्वय स्थापित किया जा सके।आपदा के प्रति प्रतिक्रियात्मक रवैये के बजाय अब पूर्वानुमान आधारित और प्रणालीगत अनुकूलन की ओर परिवर्तन आवश्यक है। यदि भारत एकीकृत, समावेशी और नवाचार-आधारित रणनीतियों को अपनाता है, तो यह जलवायु जोखिमों को समुत्थानशीलता में परिवर्तित कर सकता है। 'जलवायु-स्मार्ट भारत' का निर्माण केवल एक आवश्यकता नहीं, बल्कि सतत् और समतामूलक विकास के लिये एक रणनीतिक अनिवार्यता है।

वरिष्ठ विज्ञान लेखक।एक हजार से अधिक वैज्ञानिक लेख/शोध पत्र प्रकाशित। उ.प्र. सचिवालय में उपसचिव के पद पर कार्यरत।गोरखनाथ विज्ञान पुरस्कार, सोशल एनवायरमेंट अवॉर्ड, पर्यावरण रत्न सम्मान, विज्ञान साहित्य रत्न पुरस्कार एवं अन्य पुरस्कार से सम्मानित।

deepakkholi64@gmail.co

सापेक्षता से चलकर तो एकात्म या सिंगुलेरिटी तक



राघवेंद्र तेलंग

आइंस्टीन एवं सापेक्षतावाद का सिद्धांत एक दूसरे के पूरक हैं। यह यात्रा अब आगे चलकर क्वांटम ग्रेविटी व क्वांटम रिलेटीविटी पर आ चुकी है जहां स्ट्रिंग थ्योरी के नजरिये से अब चीज़ों को देखा-परखा जा रहा है। यह थ्योरी पदार्थ का निर्माण करने वाले कण/बल और पदार्थ पर प्रतिक्रिया करने वाले बलों की, ऊर्जा के अत्यंत सूक्ष्म तंतुओं या कहें धागों या कह लें रेशों के रूप में व्याख्या करती है। स्ट्रिंग थ्योरी अभी तक केवल विचारों तक ही सीमित है इसीलिए इसे दर्शन या फिलॉसाफी भी माना जा सकता है। इसे थ्योरी ऑफ एवरीथिंग भी कहा जाता है। स्ट्रिंग या वर्महोल जैसी बातों की समझ से लेकर तो संपूर्ण ब्रम्हांड की हर छोटी-बड़ी चीज़ को यह थ्योरी बखूबी समझाती है। सरल शब्दों में बता पाना मुश्किल है पर इतना इशारा काफी होगा कि टाइम ओर स्पेस एक दूसरे के सापेक्ष हैं, अलग नहीं। समय कम गुरूत्व में अधिक से तेज है और अधिक गुरूत्व क्षेत्र में समय धीमा है । हां ! प्रकाश की गति के बराबर चलने पर समय धीमा हो जाता है । दो अंतरिक्षीय बॉडी जब एक दूसरे की परिक्रमा करती हैं तो स्पेस में ग्रेविटी तरंगें पैदा होती हैं। कम ऊर्जा पर दृश्यमान छवियों का देखा जाना या स्ट्रिंग निर्वात का निर्माण जैसी जटिलतम मनुष्यगत अनुभूतियों के निकट आज वैज्ञानिक अवधारणाओं को भी खड़ा पाया जा सकता है।

दो की बात जैसे ही आएगी प्वाइंट ऑफ रेफरेंस की बात पैदा हो जाएगी। दो बिंदुओं के होते ही एक बिंदु अपने आप सापेक्ष हो जाता है। यहां से मेजरमेंट, तुलना, अवलोकन-चयन या अंकगणित शुरू होता है और यह सारा गणनाक्रम निश्चितता की दुनिया के असुरक्षा बोध से शुरू होता है। वह दुनिया जो निश्चितता या अमरता की तलाश - यात्रा में है उसे इम्मॉर्टेलिटी या अमरता द्वैत का पीछा करने से नहीं बल्कि वापस मुड़कर अपनी जड़ों को ठहरकर पकड़ने से मिलेगी । एकात्म में या कहें सिंगुलेरिटी में द्वैत तिरोहित हो जाता है, यहां तक कि तथाकथित संसार सहित स्व का विलीनीकरण भी । निरपेक्षता यहां सापेक्षता को लील जाती है । समस्त विश्व जिसे विज्ञान सूचना भर समझता आ रहा है उसका डाटा यहां संघनित हो जाता है या रीप्रोसेस होता है या अपना पूरक स्वरूप ग्रहण करता है, चलिए इस तथ्य को विज्ञान पर ही छोड़ देते हैं। लेकिन इतना



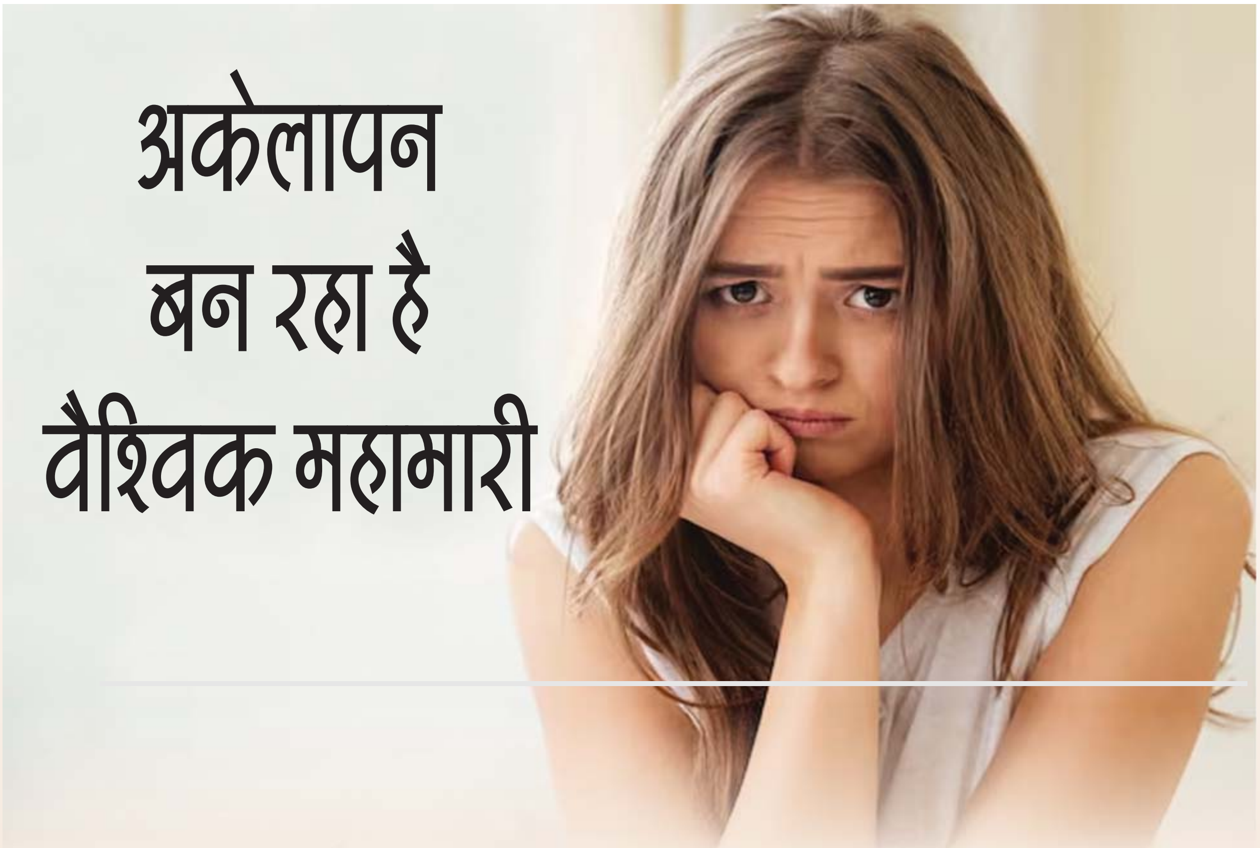


ज़रूर है कि कण और गति के गत्यात्मक जीवन का ज्ञान ब्रह्माण्ड का मूलभूत ज्ञान है जो हरेक जीव में अंतर्निहित रूप में दर्ज है। बस सही समय पर इसके प्रस्फुटन या चौतन्य होने की बात है, जो समय के किसी एक अंश में समाई हुई है। इस चौतन्य को बोध में टांकने के लिए या कहें जगाने के लिए एक ऑब्ज़र्वर या कहें गुरू की ज़रूरत पड़ती है, हालांकि अपवाद स्वरूप कहें तो नहीं भी, परंतु ऑब्ज़र्वर की महत्वपूर्ण भूमिका से इन्कार भी नहीं किया जा सकता। ऑब्जर्वर प्रक्रिया में लगने वाले लंबे समय को कम करता चलता है साथ ही दुर्गम रास्तों पर पथप्रदर्शक भी बना रहता है। इस अंधेरे रास्ते में ऑब्जर्वर लाठी का काम करता है। ऑब्ज़र्वर एक बार चेतनता के बिंदु पर पहुंचाकर विद्यार्थी में स्वयं को विलीन कर देता है और यह विलीनीकरण पश्चात एक नए साक्षी के प्रादुर्भाव का कारण बनता है । इस सिंगुलेरिटी या शून्यता या एकात्मकता से प्रज्ञा और और समृद्ध होती है। लगातार बदलते और फैलते ब्रह्माण्ड को पढ़ने-समझने के लिए हर बार नया पर्सपेक्टिव या दृष्टिकोण भी तो चाहिए। इसकी पूर्ति वह प्रक्रिया करती है जिसे हमने अभी-अभी एलीवेशन ऑफ प्रज्ञा कहा है। लेकिन प्रज्ञा का जागरण क्या इतनी-सी ही और सीधी-सी लगने वाली प्रक्रिया है ! ऐसा नहीं है यहां जो कहा गया है वह संक्षेपित वाक्यों का एक समुच्चय भर है। एक कुएं का निर्माण, उसमें उतरने का निश्चय, डूबने का भय, अंधकार की तैयारी, गुम हो जाने की आशंकाएं, वापस न लौट सकने का ख़तरा, स्मृतिहीनता-विवेकशून्य हो जाने के जोखिम और भी न जाने क्या-क्या और कैसे- कैसे विचारों के झंझावात इसके मुहाने पर खड़े मिलते हैं।

सापेक्षता से हमने बात शुरू की थी, वहीं से आगे बढ़ते हैं। सापेक्षता फ्रेम ऑफ रेफरेंस के एक ऑब्ज़र्वर के कारण फलीभूत होती है। उसे घटनाओं को जानने के प्रति चली आ रही जद्दोजहद को एक विराम बिंदु पर लाना है, मगर अति सूक्ष्म स्तर पर सापेक्षता घटनाओं की द्रुत लय के साथ तालमेल बैठाने की कोशिशों में लगातार लगी है। वह अनिश्चितताओं से भरी हुई एक अलग दुनिया है जहां विभ्रमों को थामने के लिए बड़े स्थिरांकों का सहारा लेना पड़ता है। यहां एक यक्ष प्रश्न आ खड़ा होता है कि क्या हमें ऐसी दुनिया चाहिए जिसमें किसी भी प्रकार का अनिश्चय न हो, यदि इसका उत्तर हां में है तो फिर द्वैत मिट जाता है, जन्म-मरण से छुटकारा भी मिल जाता है । यदि उत्तर नहीं में है तो फिर तो मान लेना चाहिए कि द्वैत का यह संसार ही अद्वैत की ओर ले जाने वाली एक सीढ़ी है। एकात्म या सिंगुलेरिटी की दिशा में आज जो विमर्श चल रहा है, वह इस बात की पुष्टि भी करता हुआ मालूम पड़ता है

विज्ञान के उन्नत क्षेत्र दूरसंचार से जुड़े रहे राग तेलंग ने समय-समय पर विज्ञान लेखक और विज्ञान संचारक की भूमिका निभाई। स्वभाव से कवि और कर्म से वैज्ञानिक राग तेलंग रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के विज्ञान संचार केन्द्र में निदेशक के रूप में कार्य कर रहे हैं। उनकी कई किताबें प्रकाशित हुई हैं तथा वे महत्वपूर्ण सम्मान और पुरस्कारों से सम्मानित हुए हैं।

raagtelang@gmail.com



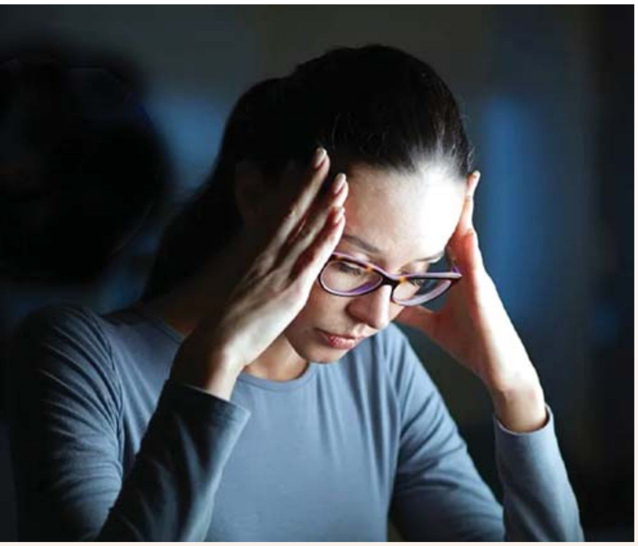
अकेलापन बन रहा है वैश्विक महामारी

रंजना मिश्रा

हम एक ऐसे युग के शिखर पर खड़े हैं, जहाँ मानव सभ्यता ने अभूतपूर्व तकनीकी प्रगति हासिल की है। दुनिया हमारी उंगलियों पर एक चमकदार स्क्रीन में सिमट आई है। एक पलक झपकते ही हम हज़ारों किलोमीटर दूर बैठे किसी अजनबी से वीडियो कॉल पर बात कर सकते हैं, सोशल मीडिया पर हज़ारों आभासी 'दोस्त' बना सकते हैं और अपनी ज़िंदगी का हर छोटा-बड़ा पल दुनिया के साथ साझा कर सकते हैं। हमारे शहर पहले से कहीं ज्यादा विशाल और गगनचुंबी हैं, उनकी नसें मेट्रो की तेज़ रफ़्तार से धड़कती हैं और उनकी सड़कें चौबीसों घंटे इंसानी सैलाब से भरी रहती हैं। बस स्टॉप पर भीड़, शॉपिंग मॉल में शोर, दफ़्तरों में कोलाहल, बाज़ारों में चहल-पहल। हर तरफ़ लोग हैं, हर तरफ़ आवाज़ें हैं। लेकिन इस अंतहीन और कान फाड़ देने वाले शोर के बीच, एक ऐसी खामोशी है जो लगातार गहरी होती जा रही है, एक ऐसा सर्द खालीपन जो हमारी आत्मा में अपनी जड़ें जमाता जा रहा है। यह खामोशी अकेलेपन की है। यह सिर्फ़ एक शब्द नहीं, बल्कि हमारे समय का सबसे बड़ा विरोधाभास है - एक ऐसी अदृश्य महामारी, जो चुपचाप हमारी दुनिया को अपनी चपेट में ले रही है। हाल ही में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा जारी की गई चौंकाने वाली रिपोर्ट ने इस कड़वी सच्चाई पर से पर्दा हटा दिया है, एक ऐसी हक़ीक़त जिसे हम महसूस तो कर रहे थे, लेकिन उसकी भयावहता से शायद पूरी तरह अनजान थे। रिपोर्ट एक वैश्विक अलार्म बजाती है, यह बताती है कि दुनिया भर में हर छह में से एक व्यक्ति अकेलेपन की इस चुभती हुई, असहनीय पीड़ा से प्रभावित है। यह कोई मामूली आँकड़ा नहीं है; यह एक वैश्विक स्वास्थ्य संकट की घोषणा है, एक ऐसी चेतावनी जो हमें हमारे समाज की बुनियाद, हमारे रिश्तों के ताने-बाने और हमारी जीवनशैली पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर कर रही है।

अकेलापन महज़ एक भावनात्मक स्थिति नहीं है। यह सिर्फ़ कुछ देर के लिए उदास महसूस करना या किसी की कमी

अकेलेपन के कारण हर घंटे लगभग 100 मौतें होती हैं। यह आँकड़ा इतना स्तब्ध करने वाला है कि इस पर यकीन करना मुश्किल होता है। इसे जब हम पूरे साल के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं, तो यह संख्या 8,71,000 से भी ज्यादा हो जाती है। ये वो लोग हैं जो किसी युद्ध, किसी प्राकृतिक आपदा या किसी जानी-पहचानी बीमारी से नहीं मरे, बल्कि एक ऐसी स्थिति से मरे जिसे अक्सर व्यक्तिगत कमज़ोरी या एक अस्थायी दौर मानकर नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है।



खलना नहीं है। यह एक जटिल, दीर्घकालिक और ज़हरीली अवस्था है जो हमारे मन और शरीर, दोनों को भीतर से दीमक की तरह खोखला कर देती है। यह वह एहसास है जब आप दोस्तों और परिवार से भरे एक कमरे में होकर भी खुद को तन्हा पाते हैं; जब आपके फ़ोन की कॉन्टैक्ट लिस्ट में सैकड़ों नाम होते हैं, लेकिन एक भी ऐसा नंबर नहीं होता जिसे आप आधी रात को अपनी सबसे गहरी चिंता बताने के लिए डायल कर सकें। यह सामाजिक जुड़ाव की हमारी अंतर्निहित मानवीय ज़रूरत और हमारी वास्तविक सामाजिक ज़िंदगी के बीच की एक दर्दनाक, चौड़ी होती खाई है। जब यह खाई असहनीय रूप से चौड़ी होने लगती है, तो इसके परिणाम विनाशकारी होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट इस विनाश का एक भयावह गणित हमारे सामने रखती है। अकेलेपन के कारण हर घंटे लगभग 100 मौतें होती हैं। यह आँकड़ा इतना स्तब्ध करने वाला है कि इस पर यकीन करना मुश्किल होता है। इसे जब हम पूरे साल के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं, तो यह संख्या 8,71,000 से भी ज्यादा हो जाती है। ये वो लोग हैं जो किसी युद्ध, किसी प्राकृतिक आपदा या किसी जानी-पहचानी बीमारी से नहीं मरे, बल्कि एक ऐसी स्थिति से मरे जिसे अक्सर व्यक्तिगत कमज़ोरी या एक अस्थायी दौर मानकर नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। यह आँकड़ा हमें बताता है कि अकेलापन एक दिन में 15 सिगरेट पीने, गंभीर मोटापे और शराब की लत जितना ही घातक है। यह एक खामोश हत्यारा है, जो बिना कोई शोर किए, धीरे-धीरे हमारे समाज के सबसे कमज़ोर धागों को तोड़ रहा है। लेकिन यह अदृश्य घाव काम कैसे करता है? एक भावना हमारे शरीर और दिमाग पर इतना गहरा असर कैसे डाल सकती है कि वह जानलेवा बन जाए? इसका जवाब हमारे विकास की लाखों साल की कहानी में छिपा है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। हमारा अस्तित्व हमेशा से समूहों में रहने, एक-दूसरे का सहयोग करने और मज़बूत सामाजिक बंधन बनाने पर निर्भर रहा है। हमारे पूर्वजों के लिए, समूह से अलग होने का मतलब था निश्चित मृत्यु – शिकारियों का आसान निशाना या भूख से मौत। इसलिए, जब हम आज की आधुनिक दुनिया में खुद को समाज से कटा हुआ या अलग-थलग महसूस करते हैं, तो हमारा शरीर इसे एक अस्तित्व के ख़तरे के रूप में देखता है। हमारा मस्तिष्क एक स्थायी 'लड़ो या भागो' की अवस्था में चला जाता है। तनाव हार्मोन, जैसे कि कॉर्टिसोल, का स्तर लगातार खतरनाक रूप से बढ़ा रहता है। शुरुआत में यह शरीर को सतर्क रखने का एक तरीक़ा है, लेकिन जब यह स्थिति पुरानी हो जाती है, तो यह हमारे अपने ही सिस्टम को तबाह करने लगती है। बढ़ा हुआ कॉर्टिसोल शरीर में पुरानी सूजन को जन्म देता है, जिसे आधुनिक चिकित्सा में अनगिनत बीमारियों की जड़ माना जाता है। यह सूजन हमारी रक्त वाहिकाओं को सख़्त कर देती है, जिससे हृदय रोग और स्ट्रोक का ख़तरा कई गुना बढ़ जाता है। यह शरीर की इंसुलिन के प्रति संवेदनशीलता को कम कर देती है, जिससे टाइप-2 मधुमेह का मार्ग प्रशस्त होता है, और यहाँ तक कि यह कुछ प्रकार के कैंसर के विकास में भी योगदान देती है। लगातार तनाव हमारी





प्रतिरक्षा प्रणाली को दबा देता है। हमारे शरीर के सैनिक, यानी व्हाइट ब्लड सेल्स, कमज़ोर पड़ जाते हैं। नतीजतन, हम सामान्य सर्दी-जुकाम से लेकर गंभीर संक्रमणों तक के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं। अकेलेपन से जूझ रहे व्यक्ति अक्सर नींद की गंभीर समस्याओं का सामना करते हैं। या तो वे सो नहीं पाते (अनिद्रा) या उनकी नींद गहरी और आरामदायक नहीं होती। नींद वह समय है जब हमारा शरीर और मस्तिष्क खुद की मरम्मत करते हैं। इस महत्वपूर्ण प्रक्रिया के बाधित होने से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का पूरा ढाँचा चरमरा जाता है।

शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले इन प्रभावों के अलावा, अकेलेपन का मानसिक स्वास्थ्य पर असर और भी गहरा और प्रत्यक्ष होता है। यह अवसाद और चिंता जैसी मानसिक बीमारियों के लिए एक उर्वर भूमि तैयार करता है। जब व्यक्ति अकेला महसूस करता है, तो नकारात्मक विचार उसे एक गहरे कुएँ में खींच लेते हैं। आत्म-मूल्य की भावना कम हो जाती है, और भविष्य अंधकारमय दिखने लगता है। यह एक दुष्चक्र बन जाता है : अकेलापन अवसाद को जन्म देता है, और अवसाद व्यक्ति को समाज से और भी दूर कर देता है, जिससे अकेलापन और भी विकराल हो जाता है। व्यक्ति को लगने लगता है कि वह किसी के प्यार या दोस्ती के लायक नहीं है, और यह विश्वास उसे नए रिश्ते बनाने से रोकता है। शोध ने यह भी साबित किया है कि लंबे समय तक सामाजिक अलगाव संज्ञानात्मक गिरावट की प्रक्रिया को तेज़ कर सकता है। सामाजिक संपर्क हमारे मस्तिष्क के लिए एक व्यायाम की तरह है। जब हम लोगों से बातचीत करते हैं, तो हमारा मस्तिष्क सक्रिय रहता है, नई जानकारी संसाधित करता है, समस्याओं का समाधान करता है और सहानुभूति का अभ्यास करता है। इस उत्तेजना के अभाव में, मस्तिष्क की कार्यक्षमता धीरे-धीरे कम होने लगती है, जिससे डिमेंशिया और अल्ज़ाइमर जैसी न्यूरोडीजेनेरेटिव बीमारियों का ख़तरा काफी बढ़ जाता है। इस प्रकार, अकेलापन न केवल हमारे दिल को तोड़ता है, बल्कि यह सचमुच हमारे मस्तिष्क को भी कमज़ोर और बीमार करता है।

एक ऐसी दुनिया में जो इतिहास में पहले से कहीं ज़्यादा जुड़ी हुई है, हम इतने अकेले क्यों होते जा रहे हैं? इसके कारण बहुआयामी और जटिल हैं, जो हमारे सामाजिक ताने-बाने में गहराई से गुंथे हुए हैं। बेहतर अवसरों की तलाश में लोग अपने गाँवों, कस्बों और परिवारों को छोड़कर बड़े शहरों में बस रहे हैं। इन शहरों की भीड़ में वे अक्सर एक चेहराविहीन इकाई बनकर रह जाते हैं। पड़ोसियों के बीच दशकों से चले आ रहे संबंध अब अपार्टमेंट की बंद दीवारों के पीछे गुम हो गए हैं। लोग एक ही इमारत में सालों तक रहते हैं और अपने बगल के फ़्लैट में रहने वाले का नाम तक नहीं जानते। काम का दबाव और भाग-दौड़ भरी ज़िंदगी उन्हें इतना थका देती है कि नए संबंध बनाने की ऊर्जा और इच्छाशक्ति ही नहीं बचती। टेक्नोलॉजी और सोशल मीडिया ने हमें एक भ्रम दिया है कि हम सैकड़ों और हज़ारों लोगों से जुड़े हुए हैं। हम अपनी उपलब्धियों, अपनी छुट्टियों और अपने मुस्कुराते हुए चेहरों की तस्वीरें पोस्ट करते हैं और बदले में लाइक्स और कमेंट्स की क्षणिक संतुष्टि की उम्मीद करते हैं। लेकिन यह जुड़ाव अक्सर सतही और बनावटी होता है। यह वास्तविक मानवीय संपर्क की गर्मजोशी, सहानुभूति और गहराई का स्थान कभी नहीं ले सकता। यह एक ऐसी दुनिया बनाता है जहाँ हर कोई अपना सर्वश्रेष्ठ, फ़िल्टर किया हुआ संस्करण प्रस्तुत कर रहा है, जिससे

दूसरों को यह महसूस हो सकता है कि उनकी अपनी ज़िंदगी कितनी अधूरी या कमतर है। ऑनलाइन दुनिया में हम अपनी असुरक्षाओं और कमजोरियों को साझा करने से डरते हैं, जबकि यही वे चीज़ें हैं जो गहरे और सार्थक संबंधों की नींव रखती हैं। नतीजा यह होता है कि हज़ारों 'दोस्तों' के बावजूद, व्यक्ति खुद को पहले से कहीं ज्यादा अकेला और कटा हुआ महसूस कर सकता है।

संयुक्त परिवारों की जगह एकल परिवारों ने ले ली है। दादा-दादी, चाचा- चाची और चचेरे भाई-बहनों का जो एक स्वाभाविक और मज़बूत समर्थन तंत्र हुआ करता था, वह अब बहुतों के लिए उपलब्ध नहीं है। इसके अलावा, समाज में व्यक्तिवाद पर बढ़ता ज़ोर भी हमें एक-दूसरे से दूर कर रहा है। 'मैं' और 'मेरा' की संस्कृति ने 'हम' और ष्हमाराष की सामुदायिक भावना को पीछे धकेल दिया है। सफलता को अक्सर व्यक्तिगत उपलब्धि के रूप में देखा जाता है और इस अंधी दौड़ में हम अक्सर उन रिश्तों को पीछे छोड़ देते हैं जो हमें भावनात्मक सुरक्षा और अपनेपन का एहसास प्रदान करते हैं। यह समझना महत्वपूर्ण है कि अकेलापन किसी एक आयु वर्ग या समूह तक सीमित नहीं है। यह हर किसी को, हर जगह प्रभावित कर रहा है। यह उस बुज़ुर्ग व्यक्ति को प्रभावित कर रहा है जिसके बच्चे दूसरे शहर में बस गए हैं और जिसका जीवनसाथी अब इस दुनिया में नहीं है। वह अपनी बालकनी में बैठकर गुज़रते वक्त को देखता है और किसी की आवाज़ सुनने को तरसता है। यह उस युवा पेशेवर को भी प्रभावित कर रहा है जो अपने सपनों को पूरा करने के लिए एक नए शहर में आया है। वह दिन भर दफ़्तर में सहकर्मियों से घिरा रहता है, लेकिन शाम को एक खाली, खामोश अपार्टमेंट में लौटता है। यह उस नई माँ को भी प्रभावित करता है जो अपने बच्चे की देखभाल में चौबीसों घंटे लगी रहती है, लेकिन वयस्क बातचीत और सामाजिक जीवन से पूरी तरह कट जाती है, और प्रसवोत्तर अवसाद के साथ अकेलेपन से जूझती है। और यह उस किशोर को भी प्रभावित कर रहा है जो स्कूल की भीड़ में खुद को अलग-थलग और नासमझ महसूस करता है और अपनी पहचान और स्वीकृति की तलाश में खतरनाक ऑनलाइन दुनिया में शरण लेता है। हर कहानी अलग है, हर चेहरा अलग है, लेकिन दर्द एक जैसा है - जुड़ाव की कमी का दर्द, समझे जाने की चाहत का दर्द।



इस वैश्विक संकट की गंभीरता को पहचानते हुए, विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट केवल समस्या को उजागर नहीं करती, बल्कि यह एक समाधान की दिशा में भी स्पष्ट संकेत देती है। रिपोर्ट का सार यह है कि मज़बूत सामाजिक संबंध केवल हमारे मानसिक स्वास्थ्य के लिए ही अच्छे नहीं हैं, बल्कि वे बेहतर शारीरिक स्वास्थ्य और लंबी उम्र की कुंजी भी हैं। सामाजिक जुड़ाव एक सुरक्षा कवच की तरह काम करता है, जो हमें जीवन के तनावों और चुनौतियों से बचाता है। इस महामारी का कोई एक टीका या एक गोली नहीं है। इसका समाधान बहु-स्तरीय है और इसमें व्यक्ति, समुदाय और सरकारों, सभी की सामूहिक भागीदारी की आवश्यकता है। व्यक्तिगत स्तर पर, पहला क़दम यह स्वीकार करना है कि अकेलापन महसूस करना कोई शर्म या कमज़ोरी की बात नहीं है, यह एक मानवीय अनुभव है। इसके बाद, हमें सक्रिय रूप से उन गतिविधियों में शामिल होने की ज़रूरत है जो हमें दूसरों से जुड़ने का मौक़ा दें। कोई नया शौक अपनाना, किसी बुक क्लब या स्पोर्ट्स टीम में शामिल होना, या स्वयंसेवा का काम करना - ये सभी सार्थक संबंध बनाने के बेहतरीन तरीक़े हैं। हमें अपने मौजूदा रिश्तों को भी प्राथमिकता देनी होगी। परिवार और पुराने दोस्तों के लिए समय निकालना, फ़ोन उठाकर केवल 'कैसा है?' पूछने की एक छोटी सी कोशिश भी बड़ा अंतर ला सकती है। सतही ऑनलाइन बातचीत से आगे बढ़कर वास्तविक, आमने-सामने की मुलाक़ातों को महत्व देना होगा। टेक्नोलॉजी का उपयोग रिश्तों को मज़बूत करने के लिए करें, न कि उन्हें प्रतिस्थापित करने के लिए। सामुदायिक स्तर पर, हमें ऐसे सार्वजनिक स्थानों को बढ़ावा देना होगा जहाँ लोग स्वाभाविक रूप से एक-दूसरे से मिल सकें। पार्क,

पुस्तकालय, सामुदायिक केंद्र, और सार्वजनिक चौक जैसे 'तीसरे स्थान' (घर और काम के अलावा) सामाजिक संपर्क को प्रोत्साहित करते हैं। स्थानीय स्तर पर ऐसे कार्यक्रम आयोजित किए जा सकते हैं जो विभिन्न पीढ़ियों के लोगों को एक साथ लाएं, जैसे कि कोई कहानी सुनाने का सत्र जहाँ बच्चे बुज़ुर्गों से मिलें, या कोई सामुदायिक बागवानी परियोजना। इससे ज्ञान, अनुभव और संबंधों का एक सुंदर आदान-प्रदान होता है। छोटी-छोटी पहल, जैसे पड़ोस में कोई उत्सव मनाना या एक-दूसरे की ज़रूरत में मदद करना, उस सामुदायिक भावना को फिर से जगा सकती है जो शहरी जीवन में खो गई है।



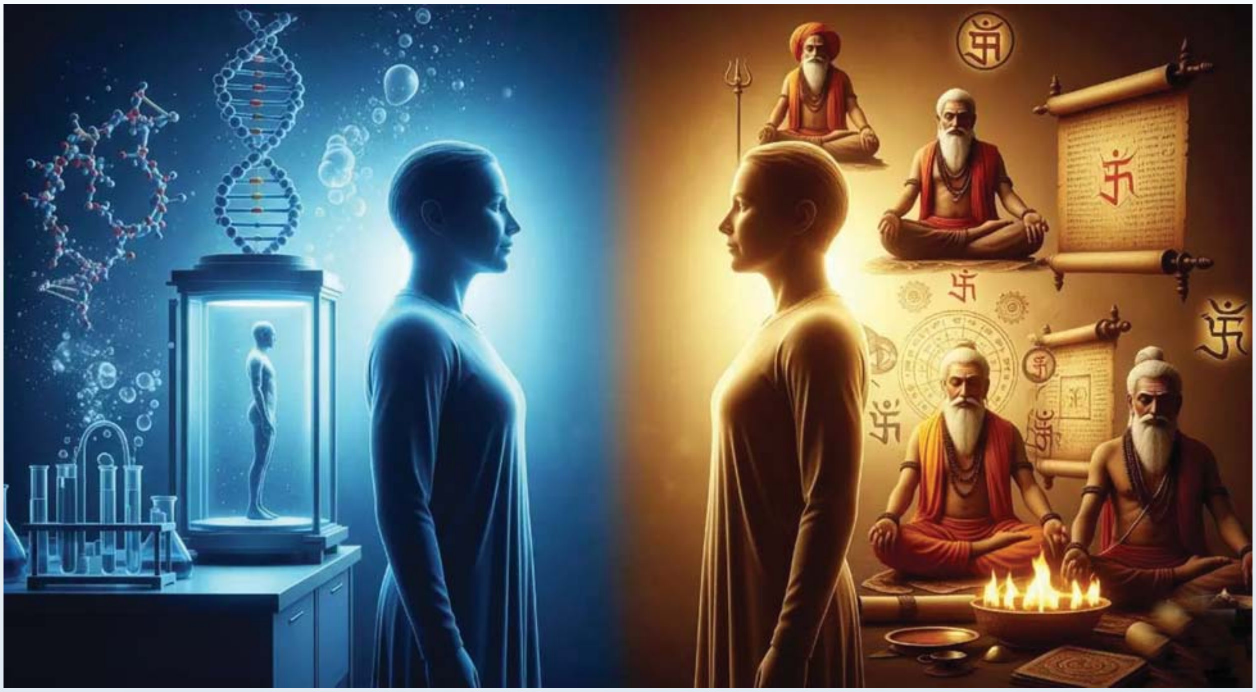
सरकारी और नीतिगत स्तर पर, सरकारों को अकेलेपन को एक गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य मुद्दे के रूप में मान्यता देनी होगी और इसके लिए बजट और संसाधन आवंटित करने होंगे। ब्रिटेन और जापान जैसे देशों ने अकेलेपन से निपटने के लिए एक विशेष मंत्रालय या मंत्री की नियुक्ति की है, जो इस मुद्दे की गंभीरता को दर्शाता है। स्कूलों में बच्चों को छोटी उम्र से ही सामाजिक और भावनात्मक कौशल सिखाया जाना चाहिए ताकि वे स्वस्थ संबंध बनाना, सहानुभूति रखना और मतभेदों को सुलझाना सीख सकें। शहरों की योजना इस तरह से की जानी चाहिए कि वे अलगाव को नहीं, बल्कि जुड़ाव को बढ़ावा दें। पैदल चलने योग्य सड़कें, सार्वजनिक बैठने की जगहें, और मिश्रित उपयोग वाले क्षेत्र लोगों को अपने कंक्रीट के बक्सों से बाहर निकलने और एक-दूसरे से मिलने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं को सुलभ, सस्ता और कलंक-मुक्त बनाने की तत्काल आवश्यकता है ताकि जो लोग अकेलेपन और इसके परिणामस्वरूप होने वाले अवसाद से जूझ रहे हैं, उन्हें समय पर पेशेवर मदद मिल सके।

अंततः, विश्व स्वास्थ्य संगठन की यह रिपोर्ट महज़ आँकड़ों और चेतावनियों का एक संग्रह नहीं है; यह मानवता के लिए एक पुकार है। यह हमें एक कठोर सत्य की याद दिलाती है : हमारी सबसे बड़ी ताक़त हमारी तकनीक, हमारी अर्थव्यवस्था या हमारी इमारतों की ऊँचाई में नहीं, बल्कि एक-दूसरे के साथ गहराई से जुड़ने की हमारी क्षमता में निहित है। हम एक ऐसी दुनिया बनाने की दौड़ में, जो अधिक कुशल, अधिक उत्पादक और अधिक सुविधाजनक हो, कहीं उस चीज़ को बहुत पीछे छोड़ आए हैं जो हमें वास्तव में इंसान बनाती है - हमारा आपसी संबंध, हमारी सहानुभूति, और हमारा समुदाय। हर घंटे 100 मौतों का आँकड़ा केवल एक चेतावनी नहीं है, यह एक आरोप भी है - एक ऐसे समाज पर जो अपने सबसे कमजोर सदस्यों को अदृश्य होने और खामोशी में दम तोड़ने दे रहा है। लेकिन इस चुनौती का समाधान किसी बड़ी क्रांति में नहीं, बल्कि छोटे-छोटे, दयालुतापूर्ण कार्यों में छिपा है। यह अगली बार किसी सहकर्मी से केवल काम की बात न करके उसके सप्ताहांत के बारे में पूछने में है। यह अपने बुज़ुर्ग पड़ोसी के लिए कुछ मिनट रुककर उनका हालचाल लेने में है। यह अपने उस दोस्त को फ़ोन करने में है जिससे महीनों से बात नहीं हुई है। यह एक मुस्कान में है, एक मदद के लिए बढ़ाए गए हाथ में है, और यह सुनने में है - वास्तव में, बिना किसी व्यवधान के सुनने में। यही छोटे-छोटे कदम उस सामाजिक ताने-बाने को फिर से बुन सकते हैं जो आज उधड़ रहा है। क्योंकि जीवन की गुणवत्ता इस बात से नहीं मापी जाती कि हमारे पास कितनी चीज़ें हैं, बल्कि इस बात से मापी जाती है कि हमारे साथ कौन है। मज़बूत, प्रेमपूर्ण सामाजिक संबंध ही वह अमृत हैं जो हमें न केवल एक लंबा, बल्कि एक सार्थक और खुशहाल जीवन भी प्रदान करते हैं। इस अदृश्य महामारी से लड़ने का यही एकमात्र तरीक़ा है - एक-एक कर, एक-एक रिश्ते को जोड़कर, जीवन में आगे बढ़ना।

रंजना मिश्रा विज्ञान लेखिका हैं। उन्होंने साइंस में इंटरमीडियट तथा समाजशास्त्र में एम.ए. उत्तीर्ण की है। वे देश भर की पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से प्रकाशित हो रही हैं। अमेजन पर ई-बुक के रूप में आपकी एक कृति 'भाव कुसुम' प्रकाशित है।

misraranjana80@gmail.com

क्लोनिंग-पुरातन से अद्यतन विकास



रश्मि दीक्षित

पुराणों में वर्णित कथाओं के अनुसार ऋषि मुनि अपनी तपस्या एवं इच्छा शक्ति से मनुष्य की सन्तति उतपन्न कर सकते थे। एक दन्त कथा के अनुसार माता पार्वती ने अपने शरीर के मैल से एक पुतला बनाया और उसमें प्राण संचरित कर दिये। वह पुतला गणेश कहलाया, पुनः इसी बालक का सिर पृथक्कर हाथी का सिर प्रत्यारोपित कर दिया गया। प्राचीन काल में क्लोनिंग की अवधारणा। विशेष रूप से कुम्भ गर्भ के रूप में महाभारत में वर्णित है जो एक ही जीव से आनुवंशिक रूप से समान सन्तानो का निर्माण करती है यह आधुनिक क्लोनिग की अवधारणा से मिलता है जिसमे जैविक प्रक्रियाओं में कुछ परिवर्तन कर सन्तानो का उत्पादन किया जाता है। एक ही जीव से अनुवांशिक रूप से समान प्रतियां बनाई जा सकती हैं। दोनों ही मामलों में प्राकृतिक प्रक्रिया के बिना सन्तानो का उत्पादन किया जाता है और जैविक प्रक्रिया में हेरफेर किया जाता है।

क्लोनिंग द्वारा किसी कोशिका या कोई अन्य जीवित या सम्पूर्ण जीव के शुद्ध प्रतिरूप का निर्माण होता है। सर्वप्रथम 1996 में इस तकनीक का प्रयोग डॉली नामक भेड़ का क्लोन तैयार करने के लिये किया गया था। विज्ञान ने अनेक क्षेत्रों में प्रगति की है जिनमे से एक क्लोनिग भी है। डॉली अन्य भेड़ों की तरह सामान्य तरीके से पैदा नही हुई, वह क्लोनिंग प्रक्रिया से बनी है। वह अपनी माँ के समान दिखने वाली जुड़वा या कार्बन कॉपी है।

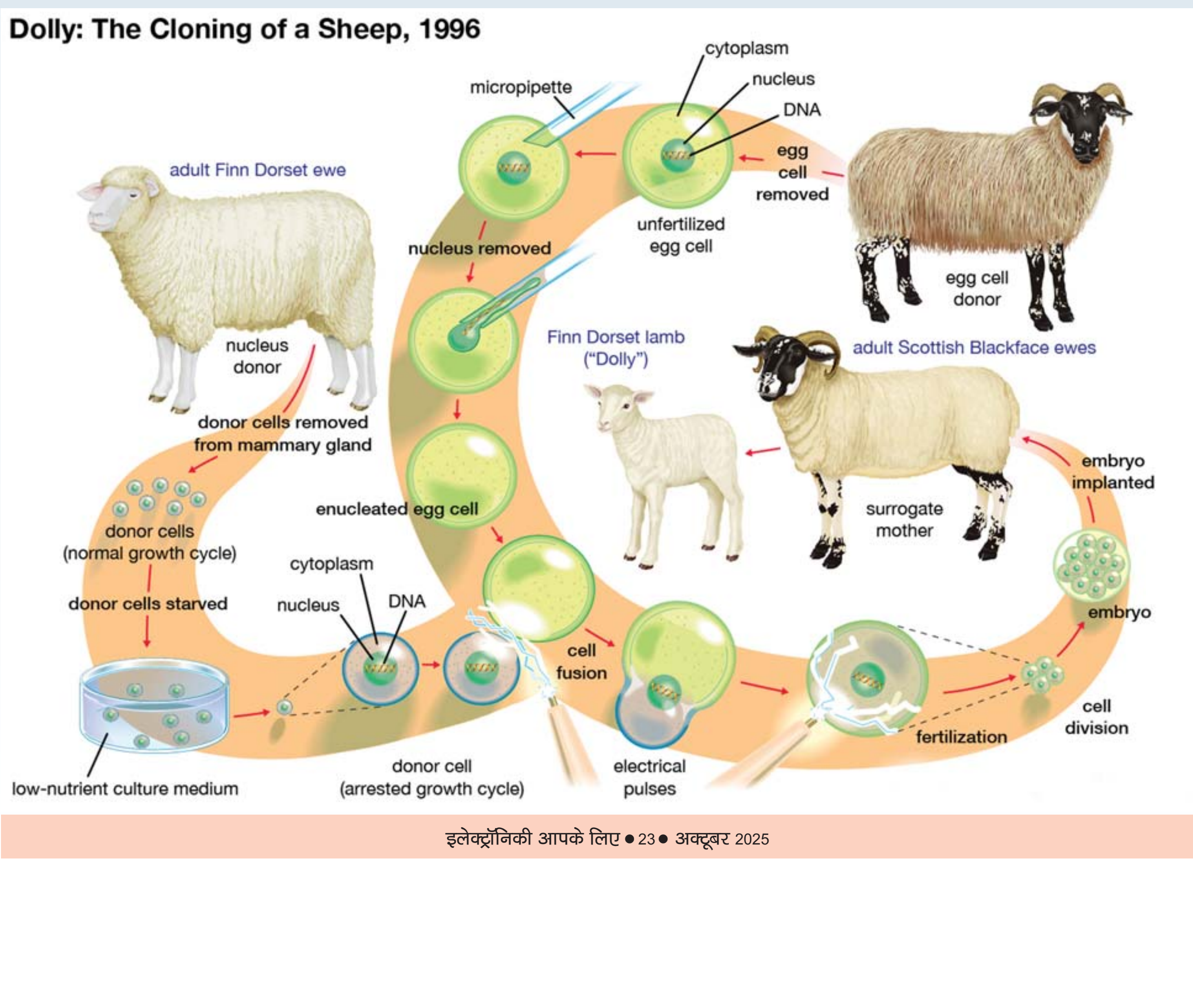
क्लोन एक जैविक रचना है जो एकमात्र जनक एवं जीवित चीजों की सटीक आनुवंशिक प्रतिलिपियाँ बनाने के लिये करते हैं। जीन, कोशिकाएं, ऊतक और जानवर भी क्लोन किये जा सकते हैं। वैज्ञानिक प्रयोगशाला में क्लोन बेहतर ढंग से अध्ययन करने और समझने के लिये बनाये जाते है। जीन का क्लोन बनाने के लिये शोधकर्ता किसी जीवित प्राणी से डीएनए लेते हैं।

जानवरों को दो तरीकों से क्लोन किया जाता है। जुड़वा भ्रूण को पहले विभाजित किया जाता है फिर उन दो हिस्सों को माँ के गर्भाशय में रखा जाता है। भ्रूण का प्रत्येक भाग एक अनोखे जानवर के रूप में विकसित होता है जबकि दोनों जानवर के जीन एक से होते है। जीन क्लोनिग की दूसरी विधि को सोमैटिक सेल न्यूक्लियर ट्रांसफर कहा जाता है। ये सभी कोशिकाएं एक जीव बनाती है। इन कोशिकाओं में गुणसूत्र का एक सेट होता है, जब वे निषेचन के दौरान जुड़ते है तो माँ के गुणसूत्र पिता के साथ विलीन हो जाते है क्लोन बनाने के लिये वैज्ञानिक एक जानवर की सोमैटिक कोशिका से डीएनए को एक अंडे की कोशिका में स्थानांतरित करते हैं जिसमें से नाभिक एवं डीएनए निकाल दिया जाता है।

जैव नैतिकता में, क्लोनिंग के अभ्यास और सम्भावनाओ के बारे में कई तरह की परिस्थितिया सामने आती है। वस्तुतः क्लोनिंग को विलुप्त प्रजातियों को पुनर्जीवित करने के साधन के रूप में प्रस्तावित किया गया है हमारी संस्कृति में क्लोनिंग की अवधारणा, विशेषतः मानव क्लोनिंग को अक्सर विज्ञान कथाओं में दर्शाया गया है।

क्लोन शब्द प्राचीन ग्रीक शब्द (क्लोन) या टहनी से लिया गया है, जिसमे टहनी से नया पौधा बनाया जाता है। वनस्पति विज्ञान में इसके लिये लुसस शब्द का प्रयोग किया गया है। प्राकृतिक क्लोनिंग अनुवांशिक इंजीनियरिंग तकनीकों या मानव हस्तक्षेप के बिना एकल कोशिका वाले जीवों से लेकर जटिल बहुकोशिकीय जीवो तक सभी अपनी वृद्धि करते है, जिनमे मुख्यतः पौधे, कवक एवं बैक्टीरिया खुद को पुनः उत्पन्न करती है। इस प्रक्रिया में बाइनरी विखंडन, नवोदित विखंडन और अनिषेकजन अलैंगिक प्रजनन के रुपों द्वारा मूल जीव अपने आप आनुवंशिक रूप से संतान पैदा कर सकते है। कुछ पौधे जैसे ब्लूबेरी, हेजल, पेड़ो, केंटकी, मिरिका और अमेरिकी स्विटगम शामिल है।

आणविक क्लोनिंग भी नए अथवा खण्डित डीएनए को पुनः बनाने की एक प्रक्रिया है। जिसमे क्लोनिंग द्वारा प्रमोटर, नॉन कोडिंग अनुक्रम और खण्डित तथा बिगड़े क्रम में लगे डीएनए को सुधारा जा सकता है। इसका प्रयोग जैविक और व्यवहारिक अनुप्रयोगों की विस्तृत श्रृंखला में किया जाता है इसमें आनुवंशिक स्थितियां सुधारना तथा प्रोटीन उत्पादन शामिल है। डीएनए की क्लोनिंग में चार चरण होते







है – विखंडन, बन्धन, ट्रांसफेक्शन, स्क्रीनिंग।

जिसमें डीएनए के धागों को तोड़कर उन्हें वांछित क्रम में एक साथ चिपका दिया जाता है।डीएनए के नवनिर्मित टुकड़ो को कोशिकाओं में डालकर नई कोशिकाओं का सफलतापूर्वक ट्रांसफेक्शन होता है। किसी कोशिका की क्लोनिंग का मतलब है,एक ही कोशिका से अनेक कोशिकाओं की आबादी प्राप्त करना। बैक्टीरिया और यीस्ट जैसे एककोशिकीय जीवो के मामले में यह प्रक्रिया सरल है। बहुकोशिकीय जीवो से कोशिका सम्वर्धन के मामले में कोशिका क्लोनिंग कठिन है क्योंकि ये कोशिकाएं मानक माध्यम में आसानी से विकसित नही होगी।

सौमेटिक सेल न्यूक्लियर ट्रांसफर जिसे आमतौर पर scnt के नाम से जाना जाता है, जिसका उपयोग अनुसन्धान या चिकित्सक उद्देश्य के लिये किया जाता है,इस प्रक्रिया को शोध क्लोनिंग या चिकित्सीय कलोनिंग भी कहा जाता है। इससे स्टेम कोशिकाओं को इकट्ठा कर मानव विकास का अध्ययन एवं संभावित बीमारी के इलाज में सुविधा होगी।

मधुमेह और अल्जाइमर जैसी बीमारियो के इलाज के लिए स्टेम सेल बनाकर चिकित्सीय क्लोनिग की जाती है।कलोनिंग की यह अलैंगिक विधि है जिसमे निषेचन या अंतर युग्मक सम्पर्क नही होता है।

अलैंगिक प्रजनन कई प्रजातियों में स्वाभाविक रूप से होने वाली प्रक्रिया है, जिसमे अधिकांश पौधे और कुछ कीड़े शामिल है। वैज्ञानिको ने क्लोनिंग के साथ कुछ बड़ी उपलब्धियां हासिल की है, जिसमे भेड़ और गायों का अलैंगिक प्रजनन भी शामिल है। बागवानी में एक ही पौधे के वंशजों को संदर्भित करने के लिये अपोमिक्सइस प्रक्रिया अपनायी जाती है। बागवानी में अनेक किस्मे कलोनिंग द्वारा बनाई गई है। जैसे अंगूर की कुछ यूरोपीय किस्मे क्लोन का प्रतिनिधित्व करती है जो 200 सालों से चली आ रही है। ग्राफ्टिंग भी क्लोनिग का ही रूप है जिसमे सभी टहनियां एवं शाखाएं आनुवंशिक रूप से एक ही पौधे की क्लोन होती है। कई पेड़, झाड़ियां, बेले एवं अन्य शाकाहारी पौधे प्राकृतिक रूप से क्लोनल कॉलोनियां बनाते है तथा पौधे के एक हिस्से से हटकर नयी पौध बना सकते है।

लोकप्रिय मीडिया में क्लोनिंग की चर्चा को हमेशा नकारात्मक रूप में देखा जाता है। टाइम्स के 8 नवम्बर 1993 के लेख में माइकल एंजलो के क्रिएशन ऑफ एडम को संशोधित करके मानव कलोनिंग की नैतिकता की आलोचना की गई।

आधुनिक दुनिया मे कुछ साल पहले जानवरों की कलोनिंग की गई। लेकिन मानव कलोनिंग अभी भी सफलतापूर्वक नही की जा सकी है और इसे प्रतिबन्धित भी किया गया है। प्राचीन भारत मे गायों और घोड़ों की संख्या बढ़ाने के लिये कलोनिंग की जाती थी। ऋग्वेद में इसका उल्लेख मिलता है जिसकी रचना 23000 वर्ष पहले हुई। ऋग्वेद में भ्रू भाइयों का वर्णन मिलता है, जिन्होंने आयुर्वेदिक नुस्खों का इस्तेमाल करके जीवन को सुगम बनाया। उन्होंने गाय और घोड़ों के भी क्लोन बनाये। ऋग्वेद की अनेक संहिताओं में इन कार्यों का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार मानव क्लोनिग का अस्तित्व भी पुराणों में मिलता है। राजा वेन और विष्णु पुराण में वर्णित निषाद की क्लोनिंग इसका उदाहरण है। ऐसे अनेक उदाहरण जिसमें राक्षस रक्तबीज, अहिरावण जो अपने रक्त की बूंदों से अपनी सन्तति उतपन्न

करने में सक्षम थे। मानव कलोनिंग का उपयोग चिकित्सा और सम्भावित प्रजनन के लिये किया गया,जिसमे भ्रूण स्टेम कोशिकाओं को अलग करके उन्हें मानव रोगों की मरम्मत के लिये ऊतक उत्पादन के लिये उपयोग किया गया। प्रजनन कलोनिंग पूरी तरह से नया प्राणी बनाने की प्रक्रिया है लेकिन नैतिक मुद्दे पूर्ण मानव क्लोनिंग में आड़े आते है। भेड़, चूहे, बिल्ली, कुत्ते यहाँ तक कि बन्दर जैसे जानवर के भी क्लोन बना लिए गए है। 1997 में रीसस मैकाक बन्दर का जन्म एक बड़ी उपलब्धि थी। जो इस विचार का समर्थन करता है कि मनुष्यों के भी क्लोन बनाये जा सकते है। सकारात्मक रूप से देखे तो मानव प्रजनन क्लोनिंग समाज के लिये फायदेमंद हो सकती है। गर्भधारण में आने वाली समस्याओं और अनेक आनुवंशिक बीमारियों से बचने के लिये क्लोनिग फायदेमंद साबित हो सकती है।

कुछ सम्भावित दुष्परिणामों के बारे में बात करे तो कलोनिंग के नकारात्मक पहलू भी है, जिनमे आनुवंशिकता, विविधता में कमी, पशुओं में स्वास्थ्य समस्याएं और नैतिक छींटे शामिल है। आनुवंशिक विविधता से बीमारियों और पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील हो जाते हैं। क्लोनिग प्रक्रियाएँ, महंगी, जटिल और श्रम ग्राह्य है। यदि मानव कलोनिंग का प्रयास किया गया तो क्लोन के लिये पहचान और मनोवैज्ञानिक चुनौतियों का सामना करना होगा। बड़े पैमाने पर पशु क्लोनिंग से पारिस्थितिकी तंत्र बाधित हो सकता है तथा अप्रत्याशित जोखिम उतपन्न हो सकता है। क्लोनिंग में दवा, संरक्षण और अनुसंधान के लिये सम्भावनाएं है, लेकिन तकनीक, नैतिक और विनियामक चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है। चिकित्सीय क्लोनिग में प्रगति से रोग उपचार में सफलता मिल सकती है जबकि प्रजनन क्लोनिंग जैव विविधता में सहायता करती है। सुरक्षित और लाभकारी परिणाम सुनिश्चित करने के लिये सामाजिक चिंताओं के साथ नवाचार को संतुलित करने के लिये जिम्मेदार शासन, सार्वजनिक भागीदारी और नैतिक ढांचे की आवश्यकता है।

बी एस सी बायो, एम ए हिंदी साहित्य, पीजीडीसीए पीएचडी। 10 राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रों में शोध पत्र का प्रकाशन एवं तीन में वाचन एवं अनेक में हिस्सेदारी। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में लघुकथाओं, कहानी एवं आलेखों का प्रकाशन। आकाशवाणी खण्डवा द्वारा विभिन्न वार्ताओं का प्रसारण अन्तर राष्ट्रीय लघुकथा प्रतियोगिता में द्वितिय स्थान अर्जितविभिन्न साझा संकलनों में रचनाओ का प्रकाशन एक किताब 'धरोहर 'का प्रकाशन।

rashmi_dixit1@rediffmail.com

रसायनों से पकते फल, बढ़ती चिंता

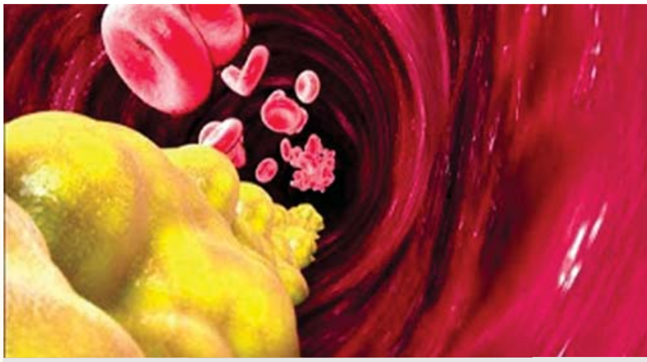


अली खान

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में फल न केवल पोषण का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं, बल्कि लाखों किसानों की आजीविका का माध्यम भी हैं। प्रकृति प्रदत्त इन उपहारों की मिठास, रंगत और सुगंध वर्षों से भारतीय जीवनशैली का हिस्सा रहे हैं। परंतु वर्तमान समय में इन फलों को कृत्रिम रूप से पकाने की जो प्रवृत्ति विकसित हो रही है, वह न केवल हमारी खाद्य प्रणाली को दूषित कर रही है, बल्कि स्वास्थ्य पर भी गंभीर संकट उत्पन्न कर रही है। विशेषज्ञों का मानना है कि फलों को जल्दी पकाने के लिए उपयोग में लाए जा रहे रसायनों, विशेषकर कैल्शियम कार्बाइड ने समस्या को और भी जटिल बना दिया है। यह न केवल मानव स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा रहा है, बल्कि पारंपरिक कृषि और जैव विविधता को भी खतरे में डाल रहा है।

कैल्शियम कार्बाइड मुख्यतः औद्योगिक उपयोग के लिए निर्मित एक रसायन है, जिसका प्राथमिक उद्देश्य एसिटिलीन गैस का उत्पादन करना होता है। यह गैस जब फलों के संपर्क में आती है, तो वह कृत्रिम रूप से उनकी पकने की प्रक्रिया को तेज कर देती है। परंतु यह प्रक्रिया एक विषैली प्रक्रिया भी होती है। इस रसायन से उत्पन्न एसिटिलीन गैस के साथ-साथ आर्सेनिक और फह्स्फीन जैसी विषैली गैसें भी उत्पन्न होती हैं, जो मानव शरीर के अंगों-विशेष रूप से मस्तिष्क, यकृत, हृदय और गुर्दों पर गहरा दुष्प्रभाव डालती हैं।

भारत में फल उत्पादन की स्थिति गौर करने लायक है। राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड के अनुसार, भारत में वर्ष 2022-23 में कुल 100.31 मिलियन टन फलों का उत्पादन हुआ, जिनमें प्रमुख फलों में आम, केला, सेब, अंगूर, संतरा, पपीता और अमरूद शामिल हैं। भारत का उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, गुजरात और पश्चिम बंगाल जैसे राज्य सबसे बड़े फल उत्पादक हैं। इन क्षेत्रों से निकले फलों की भारी मात्रा देश के कोनों-कोनों तक पहुंचती है। लेकिन इनमें से लगभग 30 फीसदी फल कच्ची अवस्था में ही बाजारों तक पहुंचते हैं, जिन्हें वहां व्यापारिक दृष्टि से जल्दी बेचने हेतु रासायनिक विधियों द्वारा पकाया जाता है। यह प्रवृत्ति विशेष रूप से शहरी मंडियों-दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, हैदराबाद और चेन्नई में अधिक देखी जाती है।



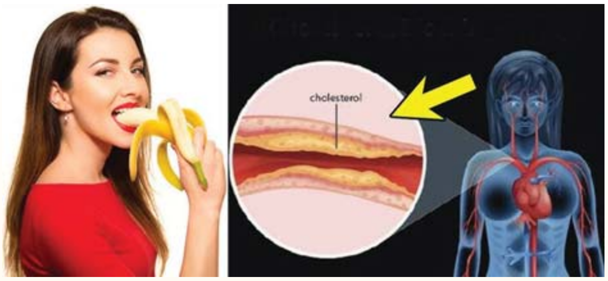

नियमित रूप से तीन महीने तक कैल्शियम कार्बाइड से पके फल खाने वाले 78 फीसदी लोगों के शरीर में कोशिकीय संरचना में परिवर्तन और यकृत एंजाइम असंतुलन पाया गया। यह रसायन शरीर के तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव डालता है जिससे सिरदर्द, चक्कर आना, स्मृति ह्रास और अनिद्रा जैसी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त, यह रसायन हृदय की धड़कनों को असंतुलित कर सकता है, उच्च रक्तचाप उत्पन्न कर सकता है और यकृत की कार्यक्षमता में अवरोध उत्पन्न कर सकता है।

भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण ने वर्ष 2006 के अधिनियम के अंतर्गत कैल्शियम कार्बाइड के उपयोग को मनुष्यों के खाद्य पदार्थों में पूरी तरह प्रतिबंधित किया है। इसके बावजूद भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक अधिनियम की 2023 की रिपोर्ट के अनुसार देश के 42 फीसदी प्रमुख महानगरीय फल विक्रेताओं द्वारा इस प्रतिबंधित रसायन का उपयोग किया जा रहा था। इसका मुख्य कारण कम निरीक्षण कर्मियों की उपलब्धता और निगरानी तंत्र की कमजोरी। देश भर में खाद्य निरीक्षण के लिए मात्र 300 के करीब निरीक्षक कार्यरत हैं, जो इतने विशाल भौगोलिक क्षेत्र के लिए बेहद अपर्याप्त हैं।

कैल्शियम कार्बाइड का उपयोग व्यापारियों के लिए एक आसान और तेज समाधान के रूप में देखा जाता है। कच्चे फल प्राकृतिक रूप से पकने में पांच से सात दिन लेते हैं, जबकि कार्बाइड से केवल 24 से 36 घंटों में पकाए जा सकते हैं। इस प्रक्रिया में फल न केवल जल्दी पक जाते हैं, बल्कि देखने में अत्यंत सुंदर और आकर्षक भी लगते हैं। यही कारण है कि व्यापारी प्राकृतिक रूप से पके फलों के बजाय रसायन से पकाए फलों को अधिक पसंद करते हैं। परंतु यह सौंदर्य केवल बाहरी होता है। इन फलों में न तो वह मिठास होती है, न सुगंध और न ही पोषण। उपभोक्ता की सौंदर्यप्रियता, जो सुंदर रंगों और चमक को प्राथमिकता देती है, व्यापारी को रासायनिक उपाय अपनाने के लिए प्रेरित करती है।

स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से, कैल्शियम कार्बाइड से पके फलों का सेवन बेहद खतरनाक सिद्ध हो सकता है। मेडिकल रिसर्च संस्थानों के मुताबिक, यह रसायन दीर्घकालिक प्रभाव डालता है। एआईआईएमएस दिल्ली की एक रिपोर्ट बताती है कि नियमित रूप से तीन महीने तक कैल्शियम कार्बाइड से पके फल खाने वाले 78 फीसदी लोगों के शरीर में कोशिकीय संरचना में परिवर्तन और यकृत एंजाइम असंतुलन पाया गया। यह रसायन शरीर के तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव डालता है जिससे सिरदर्द, चक्कर आना, स्मृति ह्रास और अनिद्रा जैसी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त, यह रसायन हृदय की धड़कनों को असंतुलित कर सकता है, उच्च रक्तचाप उत्पन्न कर सकता है और यकृत की कार्यक्षमता में अवरोध उत्पन्न कर सकता है। पाचन तंत्र पर इसका प्रभाव भी उल्लेखनीय है, क्योंकि इससे गैस, अपच, उल्टी, दस्त और पेट दर्द जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। त्वचा संबंधी समस्याएं, आंखों में जलन और एलर्जी की प्रतिक्रियाएं भी आम हैं।

यह बात विशेष रूप से चिंताजनक है कि इन खतरों के बावजूद कैल्शियम कार्बाइड का उपयोग खुलेआम हो रहा है। इसकी एक बड़ी वजह है उपभोक्ता की जागरूकता का अभाव और प्रशासन की निष्क्रियता। जिन व्यापारियों द्वारा प्राकृतिक तरीके से फल पकाए जाते हैं, उनके फल बाजार में बिकते नहीं क्योंकि वे दिखने में कम आकर्षक होते हैं। उपभोक्ता को यह समझने की आवश्यकता है कि फल का



असली मूल्य उसकी चमक या रंग नहीं, बल्कि उसका पोषण मूल्य और स्वास्थ्य पर प्रभाव है। इस प्रवृत्ति को बदलने के लिए उपभोक्ता की सजगता अनिवार्य है।

अब प्रश्न उठता है कि यदि कैल्शियम कार्बाइड से फल नहीं पकाए जाएं तो फिर विकल्प क्या हैं। पारंपरिक भारतीय पद्धतियों में फल पकाने के कई प्राकृतिक और सुरक्षित उपाय हैं। उदाहरण के लिए, फलों को बांस की टोकरियों में भरकर, भूसे में दबाकर या अखबार में लपेटकर कुछ दिनों में प्राकृतिक रूप से पकाया जाता था। इन विधियों से फल धीरे-धीरे पकते थे, लेकिन इनमें पोषक तत्व और सुगंध पूरी तरह सुरक्षित रहती थी। आज इस विधि को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, एफएसएसएआई ने एक वैकल्पिक विधि के रूप में एथीलीन गैस के उपयोग की अनुमति दी है। यह गैस एक प्राकृतिक हार्मोन की भांति कार्य करती है और फलों को सुरक्षित रूप से पकाती है। इसे 100 पीपीएम तक सुरक्षित माना गया है। परंतु इसका प्रयोग सीमित है क्योंकि छोटे व्यापारियों को इसकी जानकारी नहीं है, प्रशिक्षण की कमी है और एथीलीन जनरेटिंग चेंबर महंगे होते हैं।

यहां सरकार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। राज्य और केंद्र सरकारों को मिलकर एथीलीन गैस तकनीक को ग्रामीण एवं शहरी फल मंडियों तक पहुंचाने का कार्य करना चाहिए। व्यापारियों को इसके उपयोग का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। साथ ही, कार्बाइड का उपयोग करने वाले व्यापारियों पर कठोर दंडात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए। खाद्य निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए और नियमित निरीक्षण सुनिश्चित किया जाना चाहिए। न्यायपालिका को भी इस दिशा में पहल करनी चाहिए। दिल्ली उच्च न्यायालय ने 2022 में एक याचिका की सुनवाई में निर्देश दिया था कि मंडियों में कैल्शियम कार्बाइड की उपलब्धता पर निगरानी बढ़ाई जाए। परंतु यह निर्देश कुछ समय बाद कागजों में सीमित रह गया।

समस्या के समाधान में सामाजिक और नैतिक पहलू को भी नजरंदाज नहीं किया जा सकता। व्यापारी यदि नैतिक जिम्मेदारी समझें और उपभोक्ता यदि सजग रहें, तो यह समस्या बहुत हद तक नियंत्रित की जा सकती है। मीडिया और शिक्षा संस्थानों को भी इस दिशा में कार्य करना चाहिए। स्कूलों में बच्चों को यह सिखाना चाहिए कि फल केवल दिखावे के लिए नहीं होते, बल्कि स्वास्थ्य के लिए होते हैं।

अंततः, यह समझना होगा कि फल केवल व्यापार का साधन नहीं, बल्कि यह हमारे जीवन और स्वास्थ्य का मूल आधार हैं। यदि हम इन्हें रसायनों से दूषित करते हैं, तो यह केवल हमारे शरीर को ही नहीं, बल्कि हमारी सभ्यता को भी नुकसान पहुंचाएगा। फलों की मिठास तब तक सुरक्षित है, जब तक वह प्रकृति से जुड़ी है, न कि प्रयोगशालाओं और बाजार के दबाव से। कैल्शियम कार्बाइड से पकाए गए फल केवल सौंदर्य का भ्रम देते हैं, असल में वे विषाक्तता का पर्याय बन चुके हैं। यह न केवल चिकित्सा विज्ञान, बल्कि समाजशास्त्र और नैतिकता का भी विषय बन गया है। जब तक हम इस संकट को एक समग्र दृष्टिकोण से नहीं देखेंगे, तब तक इसका समाधान संभव नहीं। आज आवश्यकता है कि हम एक सामूहिक जनआंदोलन की तरह इस विषय को लें। जब तक सरकार, व्यापारी, उपभोक्ता और समाज इस दिशा में एकजुट होकर कार्य नहीं करेंगे, तब तक हमारे फलों की मिठास और हमारे जीवन की सुरक्षा दोनों पर संकट मंडराता रहेगा।

अली खान पिछले चार वर्षों से सतत रूप से पर्यावरणीय और सामाजिक मुद्दों पर लेखन कर रहे हैं। देशभर में प्रकाशित होने वाली विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से लेख छपते रहे हैं। देश के प्रतिष्ठित अखबारों में शुमार दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, अमर उजाला, दैनिक ट्रिब्यून, दैनिक नवज्योति, हिमाचल दस्तक, पंजाब केसरी, जनसत्ता, पीपुल्स समाचार, सुबह सवेरे, राष्ट्रीय सहारा और नवभारत टाइम्स, प्रजातंत्र, हिंदुस्तानी जुबान, गंभीर समाचार, टर्निंग इंडिया, देशज टाइम्स और उदय इंडिया के साथ-साथ कई पत्रिकाओं में लेख छप चुके हैं। वर्तमान में प्रारंभिक शिक्षा विभाग राजस्थान सरकार में शिक्षक के पद पर सिरोही जिले में सेवारत हैं।

aleekhanbhaiya@gmail.com

मैंग्रोव वन

समुद्र तटों के प्रहरी एवं जलवायु योद्धा



हरेन्द्र श्रीवास्तव

अक्सर जब कभी हम वनों की बात करते हैं तो प्रायः हमारे मन-मस्तिष्क में सदाबहार और पर्णपाती वनों का ही ख्याल आता है लेकिन वनों की दुनिया बहुत ही अनूठी और वैविध्यपूर्ण है। धरती पर भिन्न-भिन्न भौगोलिक परिस्थितियों और अलग-अलग वातावरण के मुताबिक विविध प्रकार के वन पाये जाते हैं। सदाबहार वन, पर्णपाती वन, वर्षावन, पर्वतीय वन, टैगा वन, मानसूनी वन और मरूस्थलीय वन जैसे अनेकों किस्म के खुबसूरत वन वसुंधरा पर व्यापक रूप से फैले हुए हैं। ये सभी वन महाद्वीपीय हैं अर्थात् इन वनों का विस्तार धरती के स्थलीय भाग पर है लेकिन इन वनों के अतिरिक्त भी एक अनूठ प्रकार के वनों का विकास प्रकृति में हुआ है जिन्हें हम 'मैंग्रोव वन' के नाम से जानते हैं। मैंग्रोव वन अपने आप में एक बेहद ही अनूठे एवं अद्‌भुत किस्म के वन हैं जो कि पृथ्वी और समुद्र के मिलन स्थलों पर समुद्र-तटीय क्षेत्रों में पाये जाते हैं। मैंग्रोव वनों की मुख्य विशेषता जो इन्हें स्थलीय वनों से अलग कुदरती पहचान दिलाती है वो है इनकी खारे और लवणीय पानी को सहन करने की अद्‌भुत क्षमता। मैंग्रोव वन समुद्र-तटीय क्षेत्रों में खारे-अर्द्धखारे लवणीय दलदली भूमि में पनपते हैं। जहाँ स्थलीय वन खारे और नमकीन पानी को बिल्कुल भी सहन नहीं कर सकते वहीं मैंग्रोव वन उच्चतम लवणीयता वाली जलमग्न भूमि में भी जीवित रहने की विशेष क्षमता रखते हैं। नदियों के मुंहाने वाले डेल्टाई क्षेत्र मैंग्रोव वनस्पतियों के विकास के लिए बेहद



भारत सहित दुनियाभर के कुल 123 देशों में लगभग 15 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रों पर मैंग्रोव वनों का विस्तार है। मुख्य रूप से मैंग्रोव वन उष्ण और उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु वाले समुद्री-तटों पर बिखरे हुए हैं। एशिया में दुनिया के आधे से अधिक मैंग्रोव वनों का भंडार है। इसके अलावा अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका, मध्य एवं दक्षिण अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया के सागरीय तटों पर मैंग्रोव वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। ग्लोबल मैंग्रोव एलायंस के वर्तमान आकड़ों के मुताबिक विश्व में मैंग्रोव वनों का कुल क्षेत्रफल 147000 वर्ग किलोमीटर है।

उपयुक्त परितंत्र हैं। यही कारण है कि इन वनों का विस्तार समुद्र तटों के नदी-डेल्टा क्षेत्रों में व्यापक पैमाने पर है। मैंग्रोव वन तटीय वनों की श्रेणी में शामिल हैं जो कि लैगून, पश्चजल तथा अंतर-ज्वारीय जैसी भौगोलिक दशाओं में उगते हैं। मैंग्रोव वनों को कच्छ वन, ज्वारीय वन, डेल्टाई वनों के नाम से भी जाना जाता है। वैसे तो दुनियाभर में फैले मैंग्रोव वनों में कई प्रजाति की मैंग्रोव वनस्पतियाँ पायी जाती हैं लेकिन इनमें से कुल 69 प्रजातियों को ही वास्तविक मैंग्रोव प्रजाति के रूप में गिना जाता है। सच्ची मैंग्रोव प्रजातियाँ वो मानी जाती हैं जो विकास एवं प्रजनन की दृष्टि से विशिष्ट मैंग्रोव वातावरण के लिये अनुकूलित होती हैं। मैंग्रोव पर्यावरण एक बेहद ही कठोर भौगोलिक परिस्थितियों वाला परितंत्र होता है जिसकी मिट्टी में आक्सीजन की मात्रा या तो बहुत सीमित या फिर शून्य होती है। ऐसी अवायवीय एवं अत्यंत लवणीयता वाली भूमि में भी अपना वजूद बनाये रखने हेतु इन मैंग्रोव पौधों में खास किस्म की जड़ें पायी जाती हैं जो न्यूमेटोफोर्स के नाम से जानी जाती हैं। इन जड़ों को श्वसन जड़ अर्थात् सांस लेने वाली जड़ें भी कहा जाता है। दरअसल अन्य पौधों की ही भांति मैंग्रोव पौधों के भूमिगत ऊतकों को भी श्वास लेने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है लेकिन जिस नमकीन कीचड़युक्त मिट्टी में ये उगते हैं उनमें ऑक्सीजन की मात्रा बेहद कम होने के चलते इन पौधों की जड़ें मिट्टी से ऑक्सीजन नहीं ले पाती अतः इस चुनौती से निपटने के लिए मैंग्रोव पौधों ने छिद्रनुमा श्वसन जड़ें विकसित कर रखी हैं जो कि वायुमंडल से ऑक्सीजन लेने में सक्षम होती हैं। अस्थिर भूमि में उगने वाले ये पौधे प्रतिदिन खारे पानी के बहाव को झेलते हैं। इनकी विलक्षण जड़ें न केवल इन्हें श्वसन में सहायता करती हैं बल्कि इन्हें स्थायित्व प्रदान कर समुद्री धाराओं के तेज बहाव और तूफ़ानों में भी मजबूती से खड़ा रखती हैं। मैंग्रोव वनों में कमाल की जीवटता होती है और अपनी इन्हीं अद्वितीय एवं अनोखी विशेषताओं के कारण मैंग्रोव वन दुनिया के सबसे अनूठे किस्म के वनों में शुमार हैं।

भारत सहित दुनियाभर के कुल 123 देशों में लगभग 15 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रों पर मैंग्रोव वनों का विस्तार है। मुख्य रूप से मैंग्रोव वन उष्ण और उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु वाले समुद्री-तटों पर बिखरे हुए हैं। एशिया में दुनिया के आधे से अधिक मैंग्रोव वनों का भंडार है। इसके अलावा अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका, मध्य एवं दक्षिण अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया के सागरीय तटों पर मैंग्रोव वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। ग्लोबल मैंग्रोव एलायंस के वर्तमान आकड़ों के मुताबिक विश्व में मैंग्रोव वनों का कुल क्षेत्रफल 147000 वर्ग किलोमीटर है। विश्व में सर्वाधिक मैंग्रोव वनस्पतियाँ दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में पायी जाती हैं और वैश्विक स्तर पर मैंग्रोव वनस्पतियों का सर्वाधिक आवरण इंडोनेशिया में मौजूद है। हमारा भारत देश मैंग्रोव वनों के लिहाज से बेहद समृद्ध क्षेत्र है जहाँ विश्व की कुल 3 फीसदी मैंग्रोव वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। भारत में 7515 किलोमीटर लम्बी



भारत तथा बांग्लादेश में गंगा-ब्रक्तपुत्र नदियों के डेल्टा पर फैला सुंदरवन दुनिया का सबसे बड़ा मैंग्रोव वन है। सुंदरवन में पाये जाने वाले खास किस्म के मैंग्रोव वृक्षों को सुंदरी वृक्ष के नाम से जाना जाता है और सुंदरी वृक्षों की अधिकता के कारण ही इस मैंग्रोव वन का नाम सुंदरवन पड़ा। यूनेस्को द्वारा सुंदरवन को विश्व धरोहर स्थल के रूप में भी सूचीबद्ध किया गया है।

समुद्र तट रेखा है और इन पश्चिमी और पूर्वी तटों पर नदियों द्वारा निर्मित व्यापक डेल्टाई आर्द्रभूमि क्षेत्र हैं जो मैंग्रोव वनस्पतियों के विकास हेतु अनुकूल माहौल प्रदान करते हैं। राइजोफोरा, एविसेनिया आदि कुछ विशिष्ट मैंग्रोव प्रजातियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं। भारत के 9 तटीय राज्यों एवं 3 तटीय केंद्रशासित प्रदेशों में मैंग्रोव वनों का विस्तार है। भारतीय वन रिपोर्ट 2021 के आकड़ों के मुताबिक देश में मैंग्रोव वनस्पतियों का कुल आवरण 4992 वर्ग किमी है जो कि देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 0.15 प्रतिशत है। पश्चिम बंगाल देश में सर्वाधिक मैंग्रोव वनस्पति आवरण वाला राज्य है इसके बाद क्रमशः गुजरात और अंडमान-निकोबार द्वीप समूह सर्वाधिक मैंग्रोव आवरण वाले प्रदेश हैं। भारत तथा बांग्लादेश में गंगा-ब्रह्मपुत्र नदियों के डेल्टा पर फैला सुंदरवन दुनिया का सबसे बड़ा मैंग्रोव वन है। सुंदरवन में पाये जाने वाले खास किस्म के मैंग्रोव वृक्षों को सुंदरी वृक्ष के नाम से जाना जाता है और सुंदरी वृक्षों की अधिकता के कारण ही इस मैंग्रोव वन का नाम सुंदरवन पड़ा। यूनेस्को द्वारा सुंदरवन को विश्व धरोहर स्थल के रूप में भी सूचीबद्ध किया गया है। गुजरात के कच्छ की खाड़ी और खंभात की खाड़ी में समृद्ध प्राकृतिक मैंग्रोव वन क्षेत्र मौजूद हैं। ओडिशा राज्य में ब्राह्मणी और वैतरणी नदियों के डेल्टा क्षेत्र में अवस्थित 'भितरकनिका' भारत का दूसरा सबसे बड़ा मैंग्रोव वन है। इसके अलावा आंध्र प्रदेश के कृष्णा-गोदावरी और महानदी डेल्टा क्षेत्र में तथा तमिलनाडु में पिचावरम आदि भारत के कुछ प्रमुख मैंग्रोव वन समृद्ध क्षेत्र हैं।

धरती ग्रह के पारिस्थितिकी-तंत्र को संतुलित बनाये रखने और समुद्र-तटीय इलाकों में निवास करने वाले मानव समुदायों के लिए मैंग्रोव वन बेहद महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मैंग्रोव वन समृद्ध तटीय परितंत्र के परिचायक हैं। खारे पानी में भी जीवित रहने की अद्भुत क्षमता रखने वाले ये मैंग्रोव वन समुद्री-तटों के प्राकृतिक प्रहरी हैं जो प्रतिकूल मौसमी घटनाओं से तटीय इलाकों की सुरक्षा करते हैं। भीषण चक्रवातों, भयावह समुद्री तूफानों, तीव्र सुनामी लहरों और समुद्री बाढ़ से तटीय क्षेत्रों में रहने वाली मानव आबादी को ये मैंग्रोव वन विशिष्ट सुरक्षा प्रदान करते हैं। 2004 में हिंद महासागर में आयी विनाशकारी सुनामी आपदा के दौरान इन मैंग्रोव वनों ने अहम भूमिका निभाई थी। सुनामी से प्रभावित जिन तटवर्ती क्षेत्रों में मैंग्रोव वनों की सघनता ज्यादा थी वहाँ जान-माल का नुकसान उन तटीय इलाकों के मुकाबले काफी कम हुआ था जहाँ मैंग्रोव वन कम सघन थे। तटों पर दृढ़तापूर्वक खड़े मैंग्रोव वन समुद्री तूफानों और लहरों की तीव्रता को काफी हद तक कम कर देते हैं जिससे तटीय इलाके बाढ़, ज्वार-भाटा और बढ़ते समुद्री-जलस्तर जैसी आपदाओं के प्रकोप से महफूज रहते हैं। ग्लोबल मैंग्रोव एलायंस की एक रिपोर्ट के मुताबिक मैंग्रोव वन समुद्री तूफानों से 65 अरब डॉलर से भी अधिक की संपत्ति को क्षति पहुंचाने से रोकते हैं तथा प्रतिवर्ष करीब 15 मिलियन लोगों को बाढ़ के खतरों से बचाते हैं। मैंग्रोव की अनोखी जड़ें तटीय क्षेत्रों में प्राकृतिक जलशोधक की भूमिका निभाती हैं। ये जड़ें तलछट, भारी धातुओं एवं प्रदूषक तत्वों को छानकर तटीय परितंत्र को हरदम स्वच्छ बनाये रखतीं हैं। तीव्र समुद्री धाराओं और ज्वारीय लहरों के अवरोधक के रूप में मैंग्रोव वन मिट्टी के कटाव एवं क्षरण को रोककर तटों का संरक्षण करते हैं। मैंग्रोव अथवा कच्छ वनस्पतियाँ सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों को रोकने का भी कार्य करती हैं। मैंग्रोव पौधों की पत्तियों में लेवोनाइड नामक पदार्थ उत्पन्न होता है जो कि सूर्य की खतरनाक पराबैंगनी किरणों को अवशोषित

भोजन, आवास, आर्थिक व्यवसाय, ईंधन, औषधि और आपदाओं से सुरक्षा के लिए दुनियाभर के करीब 2.5 अरब लोग मैंग्रोव वनों पर आश्रित हैं। मैंग्रोव वन स्थानीय समुदायों के लिए मत्स्यपालन, कृषि, मधुमक्खी-पालन, चारा संग्रहण जैसी कई जरूरी सुविधाएँ मुहैया कराते हैं। एक शोध आकलन के मुताबिक मैंग्रोव वन 120 मिलियन से भी अधिक लोगों को आजीविका प्रदान करने में सक्षम हैं।



करने में मदद करता है। अपनी इस विशिष्ट क्षमता के चलते मैंग्रोव वन अपने आश्रय में पलने वाले जीव-जंतुओं को हानिकारक अल्ट्रावायलेट किरणों से संरक्षण प्रदान करते हैं। मैंग्रोव वन जैवविविधता की दृष्टि से बेहद सम्पन्न पारिस्थितिकी-तंत्र है जो कि अनेकों दुर्लभ प्रजातियों के जीव-जंतुओं की शरणस्थली है। सरीसृप, उभयचर, पक्षी एवं स्तनधारी आदि विभिन्न किस्म के जंतुओं तथा वनस्पतियों की हजारों प्रजातियाँ मैंग्रोव वनों में पायी जाती हैं। केकड़े, झींगा, डॉल्फिन, घोंघे, मछलियाँ, मगरमच्छ, साँप, बगुले, शार्क, ऊदबिलाव, समुद्री ईगल आदि अनगिनत तरह के प्राणी इन दलदली वनों में जीवनयापन करते हैं। हमारे भारत देश में स्थित सुंदरवन नामक मैंग्रोव जंगल रॉयल बंगाल टाइगर जैसे शानदार वन्यप्राणी का एकमात्र घर है। इसके अलावा सुंदरवन में भारतीय अजगर, किंगफिशर, हॉर्नबिल, बाज, किंग कोबरा, चील, मॉनिटर लिजार्ड, घड़ियाल और एस्टुरीन मगरमच्छ जैसे कई अनूठे जीव पाये जाते हैं। ओड़िशा स्थित भितरकनिका मैंग्रोव वन समुद्री कछुओं का मुख्य प्राकृतिक पर्यावास है। प्रवाल-भित्ति (कोरल रीफ) समुद्री परितंत्र का अभिन्न हिस्सा है और मैंग्रोव वृक्षों से इनका परस्पर सहअस्तित्व आधारित सम्बन्ध है। मैंग्रोव वनस्पतियाँ इन प्रवाल-भित्तियों अथवा मूंगों की हानिकारक पराबैंगनी किरणों एवं प्रदूषक तत्वों से रक्षा करती हैं तथा बदले में ये मूंगे की चट्टानें मैंग्रोव पौधों की भूमि को समुद्री लहरों के उच्च वेग से सुरक्षा प्रदान करती हैं।

जलवायु परिवर्तन जैसी गंभीर चुनौती से निपटने तथा ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन को घटाने में मैंग्रोव वनों की बेहद अहम भूमिका है। मैंग्रोव वन दुनिया के सबसे अधिक कार्बन समृद्ध पारिस्थितिकी-तंत्रों में से एक हैं और इन वनों में कार्बन सोखने की अद्भुत क्षमता पायी जाती है। स्थलीय वनों की तुलना में मैंग्रोव वन वातावरण से पांच गुना अधिक कार्बन सोखने की क्षमता रखते हैं। कुशल कार्बन संग्रहणकर्ता के रूप में मैंग्रोव वन धरती के बढ़ते तापमान के लिए सर्वाधिक जिम्मेदार कार्बन डाइऑक्साइड गैस को प्रकाश-संश्लेषण क्रिया द्वारा अवशोषित कर उसे अपनी पत्तियों, तनों और जड़ों आदि हिस्सों में संग्रहीत कर लेते हैं। यहाँ तक कि मैंग्रोव वन अपनी दलदली क्षारीय तलछटी मिट्टी में सैकड़ों-हजारों वर्षों तक कार्बन को संचित रख सकते हैं। विश्व के कुल मैंग्रोव वनों का 50 फीसदी कार्बन स्टॉक इंडोनेशिया, ब्राजील, नाइजीरिया, आस्ट्रेलिया, मैक्सिको इन पांच देशों में संग्रहीत है। संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) की रिपोर्ट के मुताबिक दुनियाभर में फैले मैंग्रोव वनों में अपनी मिट्टी और बायोमास में लगभग 6.23 गीगाटन कार्बन को स्टोर करने की अद्भुत क्षमता है। मैंग्रोव वन तटीय क्षेत्रों में रहने वाली विशाल मानव आबादी के लिए आजीविका का प्रमुख आधार हैं। भोजन, आवास, आर्थिक व्यवसाय, ईंधन, औषधि और आपदाओं से सुरक्षा के लिए दुनियाभर के करीब 2.5 अरब लोग मैंग्रोव वनों पर आश्रित हैं। मैंग्रोव वन स्थानीय समुदायों के लिए मत्स्यपालन, कृषि, मधुमक्खी-पालन, चारा संग्रहण जैसी कई जरूरी सुविधाएँ मुहैय्या कराते हैं। एक शोध आकलन के मुताबिक मैंग्रोव वन 120 मिलियन से भी अधिक लोगों को आजीविका प्रदान करने में सक्षम हैं। पर्यटन के दृष्टिकोण से भी मैंग्रोव वन एक अत्यंत आकर्षक केंद्र हैं। मछली पकड़ना मैंग्रोव वन क्षेत्र में रहने वाले स्थानीय समुदाय का प्रमुख व्यवसाय है जो कि अधिकांश तटवर्ती आबादी के लिए खाद्य-पोषण एवं प्रोटीन का मुख्य स्रोत है। ग्लोबल मैंग्रोव एलायंस द्वारा जारी 2024 के नवीनतम आकड़े बताते हैं कि 4.1 मिलियन मछुआरे मछली पकड़ने के लिए मैंग्रोव वनों पर ही निर्भर हैं। इस तरह देखा जाये तो मैंग्रोव वनों का मानव जीवन एवं पर्यावरण संतुलन हेतु अतुलनीय योगदान है।



झींगा खेती के अलावा ताड़ तेल और मत्स्य उत्पादन, तेल बंदरगाहों के निर्माण, समुद्री पर्यटन जैसी विभिन्न गतिविधियाँ भी मैंग्रोव वनों के विनाश के लिए मुख्य संकट है। स्थलीय वनों की तुलना में मैंग्रोव वन तीन से पांच गुना ज्यादा तेजी से नष्ट हो रहे हैं। जलवायु परिवर्तन का बढ़ता प्रभाव भी मैंग्रोव वनों के विनाश के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी है।

आज ये बेहद चिंताजनक बात है कि समुद्र तटों के कुदरती तटरक्षक कहे जाने वाले मैंग्रोव वनों का अस्तित्व भी अब मानव जनित गतिविधियों के चलते संकट के घेरे में हैं। आदिकाल में मनुष्य और प्रकृति के बीच परस्पर सहभागिता एवं सामंजस्य का सम्बन्ध था लेकिन आधुनिक मानव का स्वरूप पहले से बदलकर अब औद्योगिक मानव का हो गया है। जो मानव आदिकाल में प्रकृति का साझेदार था वही अब प्रकृति का विध्वंसक बन चुका है। यही कारण है कि मानव की निरन्तर बढ़ती भौतिक सुखों की लालसा और आधुनिक विकास की अंधी होड़ ने पूरे प्रकृति में असंतुलन पैदा कर दिया है जिससे मैंग्रोव वन भी अछूते नहीं है। जनसंख्या वृद्धि एवं शहरीकरण के चलते पिछले कुछ दशकों से मैंग्रोव वनों पर मानव की निर्भरता बढ़ गयी है। तटीय क्षेत्रों में विकास कार्यों के चलते व्यापक पैमाने पर मैंग्रोव वनों को क्षति पहुंची है। तटीय क्षेत्रों में बुनियादी ढांचागत विकास के उद्देश्य से दुनियाभर के सैकड़ों-हजारों हेक्टेयर मैंग्रोव वन भूमि को नष्ट कर औद्योगिक क्षेत्रों में परिवर्तित कर दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) द्वारा जारी 'द वर्ल्ड मैंग्रोव्स रिपोर्ट' के नवीनतम आकड़ों के मुताबिक पिछले दो दशकों अर्थात् बीस सालों में दुनियाभर के करीब 6.77 लाख हेक्टेयर मैंग्रोव वन नष्ट हो चुके हैं जो कि बेहद चिंताजनक बात है। आज वैश्विक मानव आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा तटीय इलाकों में स्थित शहरों और बस्तियों में रहता है जो मैंग्रोव पारिस्थितिकी को खतरनाक ढंग से प्रभावित करता है। तटवर्ती मानव द्वारा मैंग्रोव वनों में बढ़ती दखलंदाजी के चलते ये अनूठे पर्यावास तेजी से सिकुड़ रहे हैं। झींगा उत्पादन और जलीय कृषि मैंग्रोव वनों के लिए आज सबसे बड़े खतरों में से एक है। हजारों हेक्टेयर मैंग्रोव वनों का सफाया कर उन्हें झींगा फार्म में तब्दील कर दिया गया है। झींगा खेती के दौरान झींगा फॉर्म से निकले प्रदूषक तत्वों और हानिकारक रसायनों ने मैंग्रोव प्रजाति के वृक्षों के लिए काफी संकट खड़ा कर रखा है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार कुल वैश्विक मैंग्रोव वनों का करीब 35 फीसदी हिस्सा झींगा खेती के कारण नष्ट हुआ है। दक्षिण-पूर्वी एशिया के म्यांमार, इंडोनेशिया और मलेशिया आदि देशों में झींगा की बढ़ती व्यावसायिक खेती मैंग्रोव वनस्पतियों को काफी ज्यादा नुकसान पहुंचा रही है। भारत में भी ओडिशा, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल और तमिलनाडु के तटों पर स्थित मैंग्रोव वन झींगा खेती के संकटों से जूझ रहे हैं। 'रामसर स्थल' के रूप में संरक्षित ओडिशा का भितरकनिका मैंग्रोव वन और तमिलनाडु का पिचावरम मैंग्रोव वन झींगा फार्म के कारण खतरे में है। झींगा खेती के अलावा ताड़ तेल और मत्स्य उत्पादन, तेल बंदरगाहों के निर्माण, समुद्री पर्यटन जैसी विभिन्न गतिविधियाँ भी मैंग्रोव वनों के विनाश के लिए मुख्य संकट है। स्थलीय वनों की तुलना में मैंग्रोव वन तीन से पांच गुना ज्यादा तेजी से नष्ट हो रहे हैं। जलवायु परिवर्तन का बढ़ता प्रभाव भी मैंग्रोव वनों के विनाश के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। लगातार बढ़ता समुद्री जल स्तर और वैश्विक तापमान वृद्धि मैंग्रोव वनों के अस्तित्व हेतु बेहद कठिन चुनौती है। अनुमान है कि पिछले 40 सालों में दुनियाभर के विभिन्न देशों के समुद्री-तटों पर फैले तकरीबन 20 फीसदी मैंग्रोव वन समाप्त हो चुके हैं। ये आकड़े तटीय पारिस्थितिकी-तंत्र की सुरक्षा और स्थिरता की दृष्टिकोण से बेहद चिंताजनक हैं।

जहाँ एक तरफ तटीय इलाकों के कुदरती तटरक्षक कहे जाने वाले मैंग्रोव वनों पर जलवायु परिवर्तन और मानवीय हस्तक्षेप के चलते खतरा मंडरा रहा है वहीं इन अनूठे वनों के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेकों प्रयास जारी हैं। पिछले कुछ दशकों से वैश्विक समुदाय का ध्यान इन मैंग्रोव वनों ने अपनी तरफ खींचा है। प्राकृतिक आपदाओं से तटीय क्षेत्रों की सुरक्षा तथा जलवायु परिवर्तन के खिलाफ लड़ाई में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए भारत सहित दुनियाभर के कई देश मैंग्रोव वनों को बचाने के लिए आगे आये हैं। आज विश्व के कुल मैंग्रोव वनों का 42 फीसदी हिस्सा संरक्षित क्षेत्र के अंतर्गत शामिल है। मैंग्रोव वनों की विशिष्ट सुरक्षा हेतु दुनियाभर में 302 रामसर साइट और 23 विश्व धरोहर स्थल स्थापित किये गये हैं। यूनेस्को द्वारा भारत में सुंदरवन को विश्व धरोहर स्थल के रूप में घोषित किया गया है। भारत में इस समय कुल 89 आर्द्रभूमियाँ रामसर साइट के रूप में मान्यता प्राप्त हैं जिनमें से सुंदरवन, भितरकनिका आदि कुछ तटीय वेटलैंड मैंग्रोव वनों के संरक्षण के लिहाज से प्रमुख संरक्षित क्षेत्र हैं। मैंग्रोव वनों के सतत उपयोग, तर्कसंगत प्रबंधन और पुनर्बहाली के उद्देश्य से वैश्विक स्तर पर कई सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का गठन किया गया है। यूनेस्को, आईयूसीएन, यूएनडीपी, वर्ल्ड वाइल्डलाइफ फंड, वेटलैंड्स इंटरनेशनल तथा ग्लोबल मैंग्रोव एलायंस जैसे वैश्विक संगठनों ने आपसी सहयोग से मैंग्रोव वनों की सुरक्षा हेतु अंतर्राष्ट्रीय समितियों की स्थापना की है। भारत सरकार द्वारा सन 1976 में ही राष्ट्रीय मैंग्रोव समिति का गठन किया गया था जिसका उद्देश्य सरकार को मैंग्रोव वनों के संरक्षण एवं नीति-निर्माण सम्बन्धी सलाह देना है। आईयूसीएन और यूएनडीपी ने तटीय पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा के दृष्टिकोण से "भविष्य के लिए मैंग्रोव" (MFF) नामक एक अनूठी पहल की शुरूआत की है जिसमें भारत भी शामिल है। ग्लोबल मैंग्रोव एलायंस (जीएमए) आज दुनियाभर में मैंग्रोव जंगलों को बचाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण संगठन के रूप में उभरा है जो नष्ट हुए मैंग्रोव वनों को पुनर्जीवित करने का व्यापक लक्ष्य रखता है। एक अनुमान के अनुसार दुनियाभर में 8,183 वर्ग किलोमीटर मैंग्रोव क्षेत्रों को पुनर्बहाली के योग्य माना जाता है। स्थानीय समुदायों की सहभागिता और पौधारोपण जैसे प्रयासों के जरिये इस संगठन ने 2030 तक कुल 4092 वर्ग किलोमीटर मैंग्रोव जंगलों को पुनर्जीवित करने का लक्ष्य निर्धारित किया है। भारत में गुजरात, ओड़िशा, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, केरल आदि तटीय राज्यों में मैंग्रोव पौधारोपण अभियान जैसे सकारात्मक कदम उठाए गए हैं। मैंग्रोव वनों के संरक्षण के प्रति जन-जागरूकता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष 26 जुलाई को 'विश्व मैंग्रोव दिवस; भी मनाया जाता है। आज इन सभी मानवीय प्रयासों की बदौलत मैंग्रोव वनों के संरक्षण के बेहतर परिणाम भी मिले हैं। संयुक्त राष्ट्र खाद्य संगठन की हालिया रिपोर्ट के मुताबिक पिछले एक दशक में लगभग 18 फीसदी मैंग्रोव जंगलों को बचाने में कामयाबी मिली है।

मैंग्रोव वन स्थलीय और समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र के बीच सहजीवी संपर्क की भूमिका निभाने वाले समृद्ध प्राकृतिक तटीय परितंत्र हैं। धरती के 1.5 से 2 डिग्री सेल्सियस बढ़ते तापमान के भावी खतरे को नियंत्रित करने में इन मैंग्रोव वनों की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता जो कि अपने भीतर अथाह मात्रा में कार्बन संचित करने की अद्भुत क्षमता रखते हैं। आज जबकि जलवायु परिवर्तन तथा ग्लोबल वार्मिंग का खतरा पूरी दुनिया पर मंडरा रहा है, ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं, धरती का तापमान निरन्तर बढ़ रहा है, जीव-जंतुओं की प्रजातियाँ विलुप्त हो रहीं हैं, समुद्री-जलस्तर में वृद्धि से तटीय इलाकों के डूबने की आशंका है और भीषण चक्रवात जैसी प्राकृतिक आपदाएँ हर साल हाहाकार मचा रहीं हैं ऐसी मुश्किल स्थिति में हमें इन अनूठे बहुमूल्य मैंग्रोव वनों का संरक्षण करने की बेहद जरूरत है।

कार्यक्षेत्र पर्यावरण शोधकर्ता, विंध्य इकोलॉजी रिसर्च फाउंडेशन, उत्तर प्रदेश।8 वर्षों से हिंदी भाषा में विज्ञान और पर्यावरण विषयों पर लेखन। पुस्तक संस्कृति, विज्ञान प्रगति, वैज्ञानिक, स्रोत फीचर्स, देवपुत्र, प्रकृति दर्शन, विज्ञान संप्रेषण, जलवायु, बाल किरण, गाँव की नई आवाज, पर्यावरण डाइजेस्ट, रेशम वाणी, कृषक भारती, साहित्यगंधा, दैनिक जागरण, अमर उजाला आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं अखबारों में लेख प्रकाशित!

harendrasrivastava356@gmail.com

जब कार्बन में छुपा हो उपनिवेशवाद



संदीप पोद्दार

जब मैंने पहली बार 'कार्बन उपनिवेशवाद' शब्द सुना तो मुझे तत्काल अपने बचपन के दिनों की एक कहानी याद आई। मेरे गाँव के पास एक पुराना कुआँ था, जिसे हर कोई सामूहिक संपत्ति मानता था-सबका अधिकार, किसी एक का हक नहीं। लेकिन एक दिन गाँव के मालिक बने बैठे किसी बाहरी ने कुएं के आसपास की ज़मीन पर कब्जा कर लिया और कहने लगा-'अब से पानी का हिसाब मेरा, तुम सभी को मुझसे आज्ञा लेनी होगी।' यह कहानी मुझे बार-बार याद आती है, जब मैं आज के कार्बन बाजार पर नज़र डालता हूं, और सोचता हूँ-क्या ये बाजार पर्यावरण को बचा रहे हैं या हमारी साझी जमीन, हवा और सांस को फिर से किसी की जागीर बना रहे हैं?

इसी सवाल ने मुझे 'कार्बन उपनिवेशवाद' अवधारणा पर गहराई से सोचने और समझने को प्रेरित किया। विज्ञान संचारक होने के तौर पर दुनिया भर की खबरें पढ़ने के दौरान, मैंने देखा कि कैसे जलवायु परिवर्तन से मुकाबला करने के नाम पर, कुछ कंपनियां और देश अपने कार्बन उत्सर्जन की भरपाई गरीब या विकासशील देशों की ज़मीन, जंगल और समुदायों को गिरवी रखकर कर रहे हैं।

कार्बन उपनिवेशवाद : क्या है यह?

सच कहूं तो, उपनिवेशवाद हमेशा सिर्फ बंदूकें, झंडे और दौलत की लूट तक सीमित नहीं रहा-यह विचार ही अपने आप में उपनिवेशवादी है कि 'हमारे संसाधन सीमित हैं, लेकिन तुम्हारे संसाधनों के मालिक हम हैं।' आज जब 'नेट जीरो' लक्ष्य की तरफ़ दुनिया बढ़ रही है, तब विकसित देश-जो ऐतिहासिक रूप से सबसे ज्यादा कार्बन उत्सर्जक रहे हैं-अपनी कमज़ोरी छुपाने के लिए अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका के देशों के जंगलों का उपयोग करके 'कार्बन क्रेडिट' या 'ऑफसेट' खरीद रहे हैं।

मैंने हाल ही में पढ़ा कि कैसे अफ्रीकी देशों में लाखों हेक्टेयर ज़मीन पर बड़ी विदेशी कंपनियों ने कब्ज़ा कर लिया है, सिर्फ इसलिए कि वहां पेड़-पौधे ज्यादा हैं और ऑफसेट सस्ता मिल जाता है। इनका तर्क बड़ा आकर्षक है- 'हम अपने देश के कारखानों से जो कार्बन छोड़ रहे हैं, उसकी भरपाई तुम अपने जंगल बचाकर कर सकते हो।' लेकिन क्या यह साफ़ तौर पर

कार्बन क्रेडिट एवं कार्बन ट्रेडिंग



अनैतिक नहीं कि जिन्होंने जलवायु संकट पैदा किया, वही अब उसकी भरपाई का बोझ दूसरों पर डाल रहे हैं?

पिछले साल, मैंने केन्या के माउ क्षेत्र में रहने वाले एक ओगियेक (Ogiek) आदिवासी के बारे में पढ़ा। उसकी आंखों में वह पीड़ा थी जो सिर्फ़ अपना घर उजड़ते देखने के बाद आती है। उससे जब कारण पूछा गया तो उसने बताया- 'वे (सरकार और कंपनियां) कहते हैं की यह जंगल अब उनके संरक्षण में रहेगा ताकि वे कार्बन क्रेडिट कमा सकें, लेकिन हमारे लिए यही जंगल जीने का साधन था- अब हमें यहां से निकाला जा रहा है।'

मैं इस अनुभव से हिल गया। इसी मर्म को विस्तार देते हुए इस लेख में मैं आपको बताऊँगा कि-

- इसके पीछे के व्यापारिक और राजनीतिक तंत्र,
- विकासशील देशों और आदिवासी समुदायों पर इसके दुष्प्रभाव,
- जलवायु न्याय और समाधान की संभावनाएँ क्या हैं,
- और-एक साधारण नागरिक या विज्ञान-रुचि रखने वाले की हैसियत से हम इसमें अपनी भूमिका कैसे समझें?

समाज, जलवायु और न्याय : परत दर परत

समाज का ताना-बाना जितना जटिल है, उतनी ही सूक्ष्मता से पर्यावरणीय अन्याय उसमें घुला हुआ है। कभी-कभी मुझे लगता है कि आज हम जिन विज्ञान आधारित नीति-निर्माणों की बात करते हैं, वे दरअसल कई सामाजिक-आर्थिक भूगोलों की अनदेखी कर देती हैं।

मैं जब किसी गाँव, कस्बे या आदिवासी बस्ती के बारे में सोचता हूँ, तो कुछ सवाल सहज में मेरे मन में आते हैं- 'क्या हमारी जमीन और हमारे संसाधनों का मूल्य सिर्फ़ किसी विदेशी कंपनी की रिपोर्ट की वैल्यूएशन है? क्या जंगल में लगी हरियाली का लाभ हमारे बच्चों को होगा या यूरोप के किसी शहर के सर्टिफिकेट में सिमट जाएगा?'

इसी सवाल का जवाब खोजती विज्ञान और समाजशास्त्र की वह शाखा है जिसे 'पर्यावरणीय न्याय' (Environmental Justice) कहा जाता है। साफ़ शब्दों में कहूँ, तो पर्यावरणीय न्याय मांग करता है कि -

- जलवायु परिवर्तन का बोझ और समाधान सबकी साझा जिम्मेदारी बने,
- और, जिन्हें सबसे ज्यादा प्रभावित किया जाता है, उन्हें फ़ैसलों में प्राथमिकता मिले।

यहाँ मुद्दा सिर्फ़ विज्ञान के साथ-साथ न्याय का भी है।

किसी भी समाज की बुनियाद उसकी जमीन, पानी और जंगलों से बनती है। जब कार्बन उपनिवेशवाद जैसे ग्लोबल पॉलिसी टूल्स इनपर नियंत्रण स्थापित कर लेते हैं, तब समाज का ढांचा धीरे-धीरे ढहने लगता है।

मुझे याद है, जब मैंने एक रिपोर्ट पढ़ी-अफ्रीका के एक देश में 20% राष्ट्रीय भू-भाग कार्बन बाज़ार का हिस्सा बना दी गई, और बदले में स्थानीय गांव वालों को वहीं की ज़मीन के रास्ते बंद कर दिए गए। 'हमें पर्यावरण बचाने के नाम पर बेघर क्यों किया जा रहा है?' यह सवाल वहां के हर

बुजुर्ग किसान के मन में है, और जवाब किसी के पास नहीं, क्योंकि प्रश्न मूलभूत परिवर्तन और उसके न्यायपूर्ण वितरण का था। यह एक ऐसी गुत्थी है, जिसे ब्रह्मांड की सारी ऊर्जा, सारा विज्ञान लगा कर भी सुलझाना संभव नहीं जब तक तक समाज के सब वर्गों में इंसाफ़ न हो। मुझे लगता है, विज्ञान का काम जीवन की जटिलताओं को हल करना है, लेकिन जब हल में विसंगतियाँ छुपी हों, तो वही विज्ञान पक्षपाती हो जाता है।

उदाहरण के लिए-विकसित देशों ने बीते 200 साल में जितनी कार्बन वायुमंडल में डाली, उसकी तुलना में विकासशील देश अभी भी अपनी कुल उत्सर्जन सीमा के भीतर हैं। बावजूद इसके, कार्बन ऑफसेट के नाम पर विकासशील देशों पर फिर से बोझ डाला जा रहा है।

आज जब जलवायु परिवर्तन का संकट गहराता गया है, तब ''जलवायु न्याय'' ही वो आधार है, जिससे आगे का रास्ता बनता है। इसका मतलब है :

- ऐतिहासिक दायित्वों की स्वीकृति,
- सच्चा मुआवज़ा और पुनर्वितरण,
- नीति निर्माण में असली भागीदारी,
- और हर कदम पर लोगों की जिंदगी को केंद्र में रखना।

एक वैज्ञानिक विचारधारी होने के बावजूद मैं मानता हूँ कि वैज्ञानिक तकनीकों, कार्बन मीटर और सैटेलाइटों का महत्व अपनी जगह है, लेकिन उनके फैसलेकृअगर समाज के साथ न्याय न करें, तो वे अपने सबसे बड़े मकसद पर ही सवाल खड़े कर देते हैं।

आदिवासी आवाज़ और प्रतिरोध

इस बात से तो आप भी सहमत होंगे कि जहाँ-जहाँ असली जंगल बचे हैं, वहाँ लगभग हर जगह आदिवासी या स्थानीय समुदायों की अमिट छाप है। शायद यही वजह है कि दुनिया की 80% जैव विविधता इन समुदायों के संवर्द्धित क्षेत्रों में मिलती है। पर अफसोस है किकृइन्हीं समुदायों को आज ''वैश्विक जलवायु समाधान'' का सबसे बड़ा शिकार बना दिया गया है।

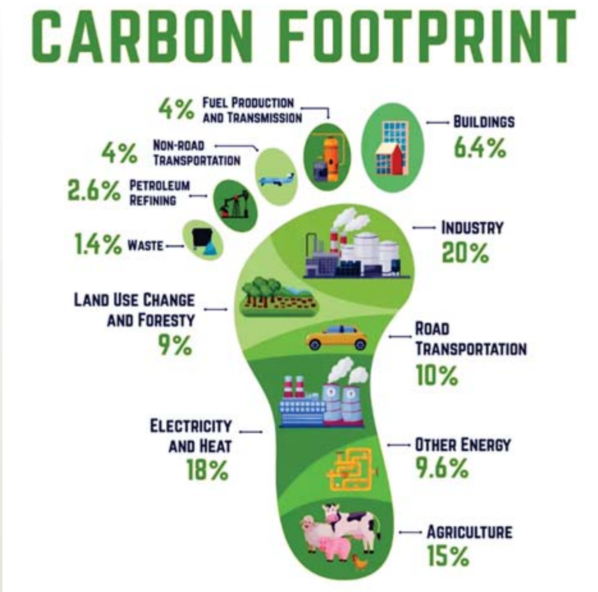
माउ की एक ओगियेक महिला ने कहा-''यह जंगल हमारे लिए माँ है, पर सरकार कह रही है अब इस पर हमारा कोई अधिकार नहीं, क्योंकि इसी से कार्बन क्रेडिट बनेगा।'' मुझे समझ में आया कि 'विकास' का झंडा जब बिना सहमति, बिना समझौते के लहराया जाता है, तो उसमें अनेक आवाज़ें दब जाती हैं।

आज अफ्रीका, एशिया, दक्षिण अमेरिका के अनेकों इलाके इसी पीड़ा की आँच में हैं-जहाँ बच्चे, महिलाएँ, बुज़ुर्ग सब बेघर, बेरोजगार और पिछड़े हुए महसूस करते हैं, सिर्फ़ इसलिए कि किसी विदेशी संस्था को उनके जंगल की कार्बन वैल्यू बेचनी थी।

पर इसका दूसरा पक्ष भी उतना ही प्रेरक है-आदिवासी समुदायों का प्रतिरोध। मुझे बार-बार वे प्रदर्शन याद आते हैं जिसमें वनवासी महिलाएँ तख्तियाँ पकड़ कर खड़ी हैं-''यह जंगल हमारा है,'' ''हमसे बिना पूछे कोई समझौता नहीं चलेगा,'' ''हमें मुआवज़ा दो, अधिकार दो!'' कई जगहों पर समुदाय संयुक्त राष्ट्र, अंतरराष्ट्रीय अदालतों और पर्यावरण संस्थाओं के सामने अपनी बात रखते हैं। इन्हीं प्रयासों की वजह से कई मामलों में कंपनियों की डील रद्द हुई, नीतियाँ बदलीं और पुनर्विचार शुरू हुआ। यह प्रतिरोध सिर्फ़ जमीन बचाने की लड़ाई नहीं, बल्कि एक पहचान, संस्कृति, भाषा और पीढ़ियों की बुनियाद को बचाने का संकल्प जैसा लगता है। हमें यह समझना चाहिए कि जिन आदिवासी समुदायों को बाहर से 'पीड़ित' दिखाया जाता है,







वे असल में सबसे बड़े 'संरक्षक' हैं-जिनके सिद्धांत, पारंपरिक ज्ञान और पर्यावरण के प्रति सम्मान आधुनिक विज्ञान को भी नया दृष्टिकोण दे सकते हैं।

मैं हमेशा मानता हूं-विश्वास-सम्पन्न समाज वही होता है जो हर आवाज़ को जगह देता है, और आदिवासी आवाज़ों को सिर्फ़ ''परामर्श'' के लिए नहीं, नीतियों के भी केन्द्र में रखता है।

राह निकले तो कैसे

मैं अकसर सोचता हूँ-क्या कोई ऐसा रास्ता है, जिससे कार्बन उपनिवेशवाद की चुनौतियों का समाधान समझदारी और न्याय के साथ हो सके? विज्ञान हमें दिशा देता है, पर असली राह तब निकलती है जब समाज, शासन, उद्योग और व्यक्ति, सब एक साथ बदलाव का हिस्सा बन जाएं।

जो क्षेत्र आज जंगलों को बचाने में लगे हैं, वहाँ के लोग ये मानने लगे हैं कि उनके जंगल दुनिया के फेफड़े हैं, लेकिन उसकी सेहत का जिम्मा उन पर छोड़ दिया गया है, जबकि संसाधन, तकनीक और अधिकार बाहरी शक्तियों की जेब में हैं। आइए समझते हैं कि इस समस्या के समाधान के किस तरह के मॉडल मौजूद हैं और किन सिद्धांतों पर आगे बढ़ा जा सकता है।

पहला-भागीदारी और सहमति (partici-pation and consent)। कार्बन प्रोजेक्ट्स में जमीनी समुदायों की भागीदारी एक अनिवार्य शर्त हो। हर समझौते में ''फ्री, प्रायर, इनफॉर्म्ड कन्सेंट'' - यानि पूरी जानकारी देकर, बिना दबाव के, स्थानीय लोगों की सहमति ली जाए। अगर स्थानीय समाज खुद पर्यावरण के संरक्षक हैं, तो उनका अधिकार सर्वोपरि है। कई सफल उदाहरण हैं, जहाँ पेसिफिक आईलैंड्स, ब्राजील या हमारे ही देश के कुछ इलाकों में समुदाय केन्द्रित जलवायु परियोजनाएँ चलीं और खूब रंग लाईं।

दूसरा- वास्तविक लाभ का वितरण (genuine benefit sharing)। कार्बन बाज़ार से होने वाली कमाई स्थानीय विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य और आजीविका में लगाई जाए, केवल सरकारी खातों या कॉर्पोरेट लाभ में नहीं। उदाहरण के तौर पर, कुछ अफ्रीकी देशों ने कार्बन क्रेडिट्स में से 30% से अधिक लाभ सीधे गांवों की पंचायतों को देने का कानून बनाया है। इस तरह न्याय सुनिश्चित होता है।

तीसरा- पारंपरिक और वैज्ञानिक ज्ञान का समावेश। जलवायु समाधान तभी मजबूत बनते हैं जब आधुनिक विज्ञान के साथ स्थानीय ज्ञान भी सम्मान पाता है। भारत के चिपको आंदोलन, ब्राजील की अमेज़ॅन पारंपरिक भूमि रक्षा, या केन्या के ओगियेक समुदाय द्वारा भावी पीढ़ी के लिए जंगल बचे रखने की नीति-ये सब प्रेरणा हैं।

चौथा-नियमों में पारदर्शिता और सार्वजनिक संवाद। सरकारों, कंपनियों और स्थानीय संस्थाओं द्वारा सभी अनुबंध और रिपोर्ट सार्वजनिक-लोकल भाषाओं में, आसान शैली में और बिना शर्त के साझा किए जाएँ। इससे लोगों के डर, भ्रांतियाँ और गलतफहमियाँ दूर होती हैं।

पाँचवा-वैकल्पिक मॉडल और 'डिकॉलनाइज्ड' जलवायु नीति। नीतियों पर पुनर्विचार करें-क्या वे पुराने उपनिवेशवादी ढर्रे पर चल रही हैं या सचमुच नई सोच के साथ हैं? आज कुछ अंतरराष्ट्रीय संगठनों व स्थायी समाधानकर्ताओं का सपना है-लोकल स्वामित्व वाली, ऊर्जा और खाद्य संप्रभुता आधारित नीति, जिसमें कार्बन बाज़ार का मामला केवल औद्योगिक लाभ नहीं, बल्कि प्रकृति और संस्कृति के समग्र संरक्षण के लिए हो।

ऐसे रास्ते तभी कारगर साबित होते हैं जब अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं (जैसे संयुक्त राष्ट्र, वर्ल्ड बैंक, क्लाइमेट फंड) और स्थानीय सरकारें अपने हितों से ऊपर वैश्विक न्याय और पर्यावरणीय संतुलन को रखें।

नई नीतियाँ और व्यावहारिक संकल्प

अगर विज्ञान में ही समाधान है तो नीति निर्माण

उसका रास्ता है। आप दुनिया की बदलती सरकारों और संस्थाओं पर गौर कीजिए-जहाँ नीतियों में सुधार होगा, कार्बन उपनिवेशवाद घटने लगेगा। हालांकि यह प्रक्रिया आसान नहीं है। आइए अब समझते हैं कि जलवायु न्याय आधारित नीति क्या होती है?



मूल रूप से, ऐसी नीति इन सिद्धांतों पर टिकती है :

- ऐतिहासिक जिम्मेदारी को स्वीकारना (यानि जिन देशों ने अतीत में ज्यादा प्रदूषण किया, वे ज्यादा मुआवजा और तकनीकी समर्थन दें),
- पुनर्गठन और मुआवजा (climate reparations),
- आजीविका, भूमि, संस्कृति की रक्षा करने वाली कानूनी गारंटी सुनिश्चित करना,
- और सबसे बड़ा, 'नेट ज़ीरो' के नाम पर सिर्फ़ नंबरों का खेल नहीं, असली उत्सर्जन में कटौती।

जैसे यूरोपियन यूनियन का नया ''कार्बन बॉर्डर अजस्टमेंट मैकेनिज्म'' (CBAM)। सतह पर यह पर्यावरण की रक्षा के लिए है, पर अनेक विकासशील देशों के लिए यह नया व्यापारिक बाधा बन गया है। ऐसे में, ग्लोबल स्तर पर पारदर्शी, न्यायसम्मत, और समान नियम अपनाना ज़रूरी हो गया है।

दूसरी तरफ़, भारत, दक्षिण अफ्रीका, इंडोनेशिया, ब्राजील जैसे देशों में ''जनभागीदारी आधारित नीति'' बनाई जा रही है, जिसमें जलवायु परियोजनाओं का लाभ गाँवों, शहरों के गरीब समुदायों, आदिवासी क्षेत्रों तक पहुंचे-और इसमें उनकी सलाह, सहमति और पारंपरिक जानकारी को शामिल किया जाए। आज जरूरत है कुछ व्यावहारिक लेने की। आइए देखें ये संकल्प कैसे तय हों?

- स्थानीय स्तर पर कार्बन ऑडिटिंग और रिपोर्टिंग को आसान बनाना होगा।
- हर प्रोजेक्ट में सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव का आकलन करना होगा।
- स्वच्छ तकनीक और पुनर्नवीकरणीय ऊर्जा में प्राथमिक निवेश सुनिष्कीट करना होगा।
- शिक्षा एवं जागरूकता कार्यक्रम चलाने होंगे जिसमें हर नागरिक अपनी भूमिका समझ सके।

इस लेख के लिए अनुसंधान करने के दौरान मुझे इंडिजीनस क्लाइमेट एक्शन (Indigenous Climate Action@ICA) के बारे में पता चला। एक स्वदेशी नेतृत्व वाला संगठन है, जो जलवायु संकट के समाधान में आदिवासी अधिकारों और ज्ञान को केंद्र में रखता है। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि स्वदेशी समुदायों की आवाज, उनके पारंपरिक पर्यावरणीय ज्ञान और अनुभव को नीति-निर्माण, वैश्विक जलवायु वार्ताओं और स्थानीय परियोजनाओं में बराबरी का स्थान मिले। मुझे बहुत खुशी हुई जब मैंने जाना कि ''इंडिजीनस क्लाइमेट एक्शन (ICA)'' जैसे ग्रुप ने अपने अधिकार के लिए नीति-विनिर्माण में सीधा हस्तक्षेप किया। इसका नतीजा था-अंतरराष्ट्रीय जलवायु सम्मेलन में पहली बार आदिवासी मिशन को वरीयता दी गई।

इस तरह, नीति और संकल्प एक सतत संवाद हैं-कभी पूरी तरह सम्पूर्ण नहीं, पर निरंतर बदलते रहना इनका गुण है।

निजी स्तर पर भूमिका-हम क्या कर सकते हैं

एक विज्ञान कथाकार के तौर पर सबसे बड़ा सवाल यह होता है- ''क्या मेरी कही गई कहानी वाकई समाज को बदल सकती है? क्या एक सामान्य नागरिक अपना योगदान दे सकता है?'' शुरुआत में, जब कार्बन उपनिवेशवाद जैसी भारी-भरकम अवधारणाएं सामने आती थीं, तो मुझे भी लगता था-यह तो सिर्फ़ सरकार, कंपनियों या वैज्ञानिकों का मसला है। लेकिन जब मैंने रोज़मर्रा के लोगों की कहानियाँ सुनीं, शिक्षा कार्यक्रमों में हिस्सा लिया, और बृहत पैमाने पर इसके बारे में पढ़ा, तो समझ में आयाक्ृअसली बदलाव व्यक्तिगत स्तर से शुरू होता है।



व्यक्तिगत स्तर पर पहला कदम–जागरूकता

हम जिस खबर को पढ़ते हैं, उसपर सवाल उठाएं-कार्बन ऑफसेट की खबर में स्थानीय समुदाय का जिक्र है या नहीं? क्या उपनिवेशवादी तंत्र का पर्दाफाश करने वाली सामग्री आप दूसरों तक पहुँचा रहे हैं?

दूसरा–सहानुभूति और संवाद

चाहे आप किसी गाँव में रहें या महानगर में, कोशिश करें कि कभी किसी जलवायु परियोजना में शामिल होंकृजैसे वृक्षारोपण, ऊर्जा बचत, किसी लोकल समिति या पंचायत की बैठक। वहाँ की समस्याएं, संवाद और अनुभव आपके समझ के नजरिए को बदल देगा।

तीसरा–चुनाव का अधिकार

जितना हो सके-पुनर्नवीकरणीय ऊर्जा, स्थानीय उत्पाद, और टिकाऊ चीज़ों का इस्तेमाल करें। फिर चाहे सरकार को खत लिखना हो, कंपनी से सवाल करना हो, या वोट देते समय पर्यावरण विकल्प चुनना हो–अपने अधिकार का इस्तेमाल करें।

चौथा–बच्चों और युवाओं को सीख देना।

मुझे याद है, एक बार एक छोटे कस्बे के स्कूल में जब मैंने देश के एक बड़े औद्योगिक घराने द्वारा संचालित 'वंतारा' के एक संभावित कार्बन उपनिवेश और जैविक डाटा का भंडार होने की कहानी बच्चों को सुनाई तो वे बड़े उत्साह से अपने माता-पिता को बताने लगे कि किस तरीके से जलवायु नीतियाँ उनके गाँव को प्रभावित कर सकती हैं। यह परिवर्तन की असली शुरुआत थी।

पाँचवा–साझा जिम्मेदारी।

हर व्यक्ति, चाहे वह विज्ञान-प्रेमी हो या साधारण पाठक, अपनी भूमिका को पहचान सकता है। बदलाव आपके अंदर ही हैकृबात कीजिए सीखिए, लड़िए, सहयोग दीजिए।

इस आलेख को लिखने की यात्रा के बाद मैं इतना जरूर मानता हूँ-कार्बन उपनिवेशवाद केवल वैज्ञानिक या आर्थिक समस्या नहीं है, बल्कि यह एक नैतिक और आध्यात्मिक प्रश्न है। हर कहानी, आंकड़ा और नीति के बाद सबसे बड़ा सवाल वही लौटता है- ''क्या हम अपने बच्चों के लिए वह धरती छोड़ना चाहते हैं, जिसमें प्रकृति के हर हिस्से का अन्याय हो, हर आवाज़ का सम्मान न हो?''

मुझे याद है, जब पहली बार किसी आदिवासी नेता ने कहा- ''जलवायु न्याय सिर्फ़ मुआवजा नहीं, सहचर्य है, साझेदारी है, और पीढ़ियों के लिए नई दृष्टि देना है।'' विज्ञान हमें बताता है कि जलवायु संकट कितना बड़ा है, पर समाधान समाज के हर हिस्से से मिलकर ही निकलेगा। इक्कीसवीं सदी के बीच में, जब तकनीकी क्रांति, ग्लोबल वॉर्मिंग और नीति निर्माण की हलचलें चारों ओर हैं, तब एक पंक्ति बार-बार मेरे मन में गूंजती है :

'अगर आज हमने न्याय और सहमति को अपनाया, तो भविष्य के इतिहासकार हमें 'पृथ्वी के रक्षक' के रूप में याद रखेंगे। और अगर नहीं-तो वे नए उपनिवेशवाद की कहानी लिखेंगे, जिसमें हम सिर्फ़ तमाशबीन थे।'

इसलिए, मेरे लेख की सीख यही है-

- सवाल उठाइए,
- संवाद शुरू कीजिए,
- बदलाव की जिम्मेदारी लीजिए,
- और विज्ञान को न्याय के साथ जोड़िए।

तभी हम कार्बन उपनिवेशवाद जैसे संकट से आगे बढ़कर, एक नया, न्यायपूर्ण और हरित भविष्य गढ़ सकेंगे। यही विज्ञान का सही उद्देश्य है-मनुष्य, समाज और प्रकृति के बीच सह-अस्तित्व, समझ और न्याय।

विज्ञान कथाकार-लेखक एवं संयोजक, astrophilesindia.in क्लब। स्नातक, यांत्रिकी अभियांत्रिकी, आइसेक्ट विश्वविद्यालय, भोपाल (2016)। जूनियर रिसर्च फ़ेलो, टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, मुंबई (2016-17)। 2016 से विज्ञान लेखन में सक्रिय, विज्ञान कथाओं के माध्यम से विद्यार्थी एवं गैर-वैज्ञानिक समूहों में वैज्ञानिक विचारधारा का संचार करने में प्रयासरत हैं। अपने अंतरिक्ष क्लब astrophilesindia.in के माध्यम से 'विज्ञान प्रसार' एवं 'राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालय परिषद' के साथ जुड़ कर अंतरिक्ष विज्ञान में रुचि रखने वाले अंतरिक्ष-प्रेमियों के समूह का संचालन कर रहे हैं।

ignitedmindsscienceclub@gmail.com

हिलसा मछली

स्वास्थ्य और आस्था से जुड़ी



सफ़िया सिद्दीक़ी

संसार में हमें देने के लिए हजारों खजाने हैं कुदरत ने जहां मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ रूप दिया, वहीं संसार की हर जानदार और बेजान चीज उसके लिए उपयोगी बनाई, पेड़, पौधे ,पहाड़, समुद्र, मिट्टी पृथ्वी की हर वस्तु मनुष्य के लिए उपयोग में आती है, समुद्र में हजारों लाखों खजाने छुपे हैं, मनुष्य के लिए समुद्र और पानी में रहने वाले जीव जंतु में सबसे करीब मछलियां रही है, फिर चाहे उन्हें अपने भोजन में शामिल करना हो व्यापार करना हो मछलियां सदैव मनुष्य के काम आई है।

कहते हैं, मछली खाना स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है, क्या आप जानते हैं? मछली उपहार में देना भी शुभ माना जाता है, इसी प्रकार बंगाल में दुर्गा पूजा में हिलसा मछली नाभि शुभ माना जाता है, कहते हैं, हिल्सा के बिना पूजा अधूरी रहती है। हिलसा को इलिश नाम से भी जाना जाता है। यह बंगाल देश की राष्ट्रीय मछली है। भारत के बंगाल के क्षेत्र में बहुत लोकप्रिय और मांग वाली मछली है। यह भारतीय राज्य पश्चिम बंगाल की राज्य मछली कहलाती है। हिलसा या इलिश क्लूपीडे परिवार क्लूपीफॉमेस ऑर्डर टेनुअओलोसा प्रजाति से संबंधित है।

हिलसा मछली को अलग-अलग जगह पर अलग-अलग नाम से जाना जाता है। झटका, इल्ली, इलिश, एलिस, पल्ला फिश, हिल्सा, इलिह आदि नाम से बुलाया जाता है।

उड़िया-मोदर या पल्ला
सिंधी -पल्लो माछी
तमिल- में उल्ला मीन
तेलुगु- पुलस

इलिश नाम का प्रयोग भारत के असमिया बंगाली और उड़ीसा समुदाय में भी किया जाता है। इराक में इसे सबूर कहा जाता है। मलेशिया और इंडोनेशिया में इसे आम तौर पर 'टेरूबोक' के नाम से जाना जाता है। इस की विशिष्ट विशेषताओं के



हिलसा का शरीर दृढ़ता से संकुचित और मध्यम रूप से गहरा होता है। जिसमें पृष्ठीय और ऊपरी जबड़ा होता है, ज्यादातर इनका शरीर चांदी सी चमक लिए होता है, इस प्रजाति की माताएं न से बड़ी होती है, नर 46 से सेंटीमीटर से अधिक नहीं बढ़ सकते मादाएं 55 सेमी की लंबाई तक पहुंच सकते हैं। परिपक्वता आमतौर पर पहले वर्ष के अंत या दूसरे वर्ष की शुरुआत तक प्राप्त होती है। जिसमें नर 26 और 29 सेमी मादा से 31 से 33 सेमी के आकार में परिपक्व होती है।

कारण तौलिया और कोमल होने के कारण कुछ लोग मलय विशेष रूप से उतरी जोहोर में इस 'तेरूबोक' कहते हैं। हिलसा या इलिश क्लूपीडे परिवार क्लूपीफॉमेस ऑर्डर के टेनुअओलोसा प्रजाति से संबंधित है।

हिलसा का शरीर दृढ़ता से संकुचित और मध्यम रूप से गहरा होता है। जिसमें पृष्ठीय और ऊपरी जबड़ा होता है, ज्यादातर इनका शरीर चांदी सी चमक लिए होता है, इस प्रजाति की माताएं न से बड़ी होती है, नर 46 से सेंटीमीटर से अधिक नहीं बढ़ सकते मादाएं 55 सेमी की लंबाई तक पहुंच सकते हैं। परिपक्वता आमतौर पर पहले वर्ष के अंत या दूसरे वर्ष की शुरुआत तक प्राप्त होती है। जिसमें नर 26 और 29 सेमी मादा से 31 से 33 सेमी के आकार में परिपक्व होती है। इनमें कोई पृष्ठीय रीढ़ नहीं होती है, लेकिन 18 और 21 पृष्ठीय नरम करने और गुदा है, 30 से 33 स्क्रू है, ऊपरी जबड़े में एक स्पष्ट माध्यम पायदान है, गिल रॉकर्स बारीक और कई आर्च के निचले हिस्से पर लगभग 100 से 250 और पंख हाईलाइन है, मछली में गिल खोलने के पीछे एक गहरा धब्बा दिखाई देता है, जिसके बाद युवा मछलियों में अगल बगल भाग के साथ छोटे धब्बों की एक श्रृंखला होती है, मछली सोने और बैगनी रंग के साथ चांदी के रंग की चमक लिए होती है।

दक्षिण पश्चिम मानसून (जून से सितंबर और जनवरी से अप्रैल) के दौरान अंडे देने के लिए लगभग 50 से 100 किमी तक नदियों (ऐनाडोमस) तक चढ़ती हैं, मछली का वास्तविक चरम प्रजनन काल शोधकर्ताओं के बीच बहस का विषय है, अंडे देने के बाद वे समुद्र में वापस लौट आते हैं, जिन्हें बांग्लादेश में जटका नाम से जाना जाता है। हालांकि कुछ मछलियां नदियों में ही निवास करती हैं। 1900 के दशक से दक्षिण एशिया में विशेष रूप से भारत और बंगाल देश में हिल्सा के प्रजनन और खेती के लिए कई प्रयास किए गए हैं। हालांकि कैद में मछली के जीवन चक्र को पूरा करने में कोई महत्वपूर्ण सफलता नहीं मिली है। यह प्रजाति प्लवक पर ही फीड करती है। और कीचड़ भरे ताल में चार ढूंढती है। इसके आहार में मुख्य रूप से बैसिलरीओफाइसी (डायमंड) क्लोरोफाइसी (हरा शैवाल) और क्रिश्चियन (कोपेपोडा और क्लैडोसेरा) शामिल है, जबकि वयस्क आमतौर पर क्लोरोफाइसी और बैसिलरीओफासी पर फीड करते हैं। किशोर मुख्य रूप से क्रस्टेसियन पर निर्भर होती हैं। इलिश बांग्लादेश की राष्ट्रीय मछली है। आंध्र प्रदेश में कहावत है, 'पुस्टेलु अम्मी आमिना खुलासा टिनोच्चु' जिसे आमतौर पर मतलब है पुलासा इलिश खाना फायदेमंद है, भले ही आपको अपना मंगलसूत्र बेचना पड़े। हिलसा को गोदावरी जिलों में पुलासा नाम से भी जाना जाता है। पुलासा नाम मछली के साथ साल के जुलाई सितंबर के बीच सीमित अवधि के लिए रहता है। जब बाढ़ गोदावरी नदी को बढ़ाती है। इस समय मछली की मांग बढ़ जाती है। और कभी-कभी तो यह +100 प्रति किलो तक पहुंच जाती है। कई बांग्लादेशी हिंदू परिवारों में इलिश मछलियों की एक जोड़ी शुभ दिनों पर खरीदी जाती है, उदाहरण के लिए विशेष प्रार्थना पूजा देवी सरस्वती, लक्ष्मी पूजा को हिल्स की जोड़ी अर्पित की जाती है। माना जाता है इसके बिना पूजा अधूरी होती है। हिलसा को सिंध में पल्लो माछी के नाम जाना जाता है। और यह सिंध व्यंजनों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। जिसे कई तरह की पाक विधियों से तैयार किया जाता है। मछली में अक्सर अंडे होते हैं। जिसे सिंधी में आनी कहा जाता है और इसे एक स्वादिष्ट व्यंजन के रूप में खाया जाता है। हिल्सा स्वाद के साथ भावना से जुड़ी है। इसकी चाहत एक अनोखी है। शायद ही किसी मछली को लेकर गीत या कविताएं लिखी गई हो। 2023 तक

दुनिया की कुल इलिश आपूर्ति 97% बांग्लादेश से होती है। यह मछली बांग्लादेश के कुल मछली उत्पादन का लगभग 12% और सकल घरेलू उत्पादन का लगभग 1- 15% योगदान देती है। 6 अगस्त 2017 को उद्योग मंत्रालय के तहत पेटेंट डिजाइन और ट्रेडमार्क विभाग ने इलिश को बांग्लादेश का भौतिक संकेत घोषित किया। लगभग 450,000 हजार लोग अपने आजीविका के एक बड़े हिस्से के रूप में मछली पकड़ने में सीधे तौर पर शामिल है। लगभग चार से पांच मिलियन लोग अप्रत्य प्रत्यक्ष रूप से व्यापार से जुड़े हैं। हिल्सा को अलग-अलग जगह पर अलग-अलग नाम से बुलाया जाता है। इलिश, पल्ला फिश, मोदर या पलवा पल्लो माछी, उल्ला,मीन, इंग्लिश का नाम प्रयोग भारत के असमिया बंगाल और उड़ीसा समुदायों में भी किया जाता है। इराक में इसे सबूर कहा जाता है। मलेशिया और इंडोनेशिया में इसे आमतौर पर टेरूबोक के नाम से जाना जाता है। इसकी विशिष्ट विशेषताओं के कारण तैलीय और कोमल होने के कारण कुछ मलय विशेष रूप से उतरी जोहर में इस टेरूबोक उम्नो म्यांमार में कहते हैं। यह बंगाल भारत-पाकिस्तान, म्यांमार और फारस की खाड़ी क्षेत्र में नदियों और मुहानो में पाई जाती है। यह मछली 11 देश में पाई जाती है। भारत, बांग्लादेश म्यांमार, पाकिस्तान, ईरान, इराक, कुवैत, बहरीन इंडोनेशिया, मलेशिया और थाईलैंड, बांग्लादेश दुनिया में सबसे ज्यादा हिस्सा उत्पादन करने वाला देश है, म्यांमार फिर भारत है। अनुमान लगाया जाता है। कि कुल हिलसा पड़कर 97% बांग्लादेश से आता है। 2008 से 2023 तक देश में हिस्सा उत्पादन में 92% की वृद्धि हुई है। बांग्लादेश से इलिश को सबसे बेहतरीन माना जाता है। भारत में उड़ीसा, त्रिपुरा, असम, गुजरात और आंध्र प्रदेश में बहुत लोकप्रिय है। इसका निर्यात विश्व स्तर पर है। उत्तर अमेरिका में इलिश आसानी से नहीं मिलती है। उसकी वजह अन्य शाद मछलियों को कभी-कभी इंग्लिश के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यह आमतौर पर उत्तरी अमेरिका का पूर्वी तट के पास होती है। जहां ताजी शाद मछलियां पाई जाती हैं। जिनका स्वाद इलिश जैसा होता है ।बांग्लादेश में यह मछलियां मेघना जमुना डेल्टा में पाई जाती हैं। जो बंगाल की खाड़ी और मेघना (निचली ब्रह्मपुत्र) और यमुना नदी में बहती हैं। वहीं भारत में रूपनारायण हुगली महानदी नर्मदा और गोदावरी नदियों और चिलका झील अपनी मछली पैदावार के लिए प्रसिद्ध है। भारत में आंध्र प्रदेश राज्य में



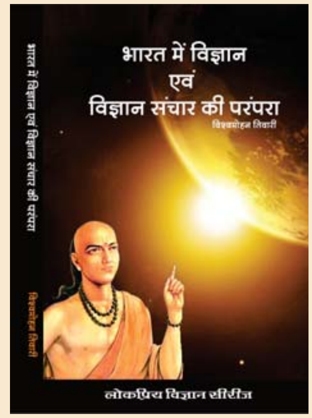
अधिकांश हिल्सा मछलियां सिंध में सिंध नदी डेल्टा में पकड़ी जाती हैं। इन्हें समुद्र में भी पकड़ा जाता है। इस मछली के काटे नुकीले और सख्त होते हैं। जिससे कुछ लोगों के लिए इसे खाना मुश्किल होता है। इलिश एक तैलियां मछली है। जो ओमेगा 3 फैटी एसिड से भरपूर है। स्वाद के लिए शरीर के लिए बहुत लाभकारी है।

हिलसा का विशेष महत्व है। यहां पुलसा शब्द का तात्पर्य विशेष रूप से बड़े परिपक्व हिलसा से है। जो गोदावरी नदी के साथ ऊपरी की ओर प्रवास करते हैं। यह प्रवासी यात्रा महत्वपूर्ण है। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि गोदावरी का अनूठा जगह पर पकड़ी गई । हिल्सा की तुलना में मछली में अधिक समृद्ध स्वाद और दृढ़ बनावट के विकास में योगदान देता है। इस गुणवत्ता और इसकी सीमीत मौसमी उपलब्धता के करण पुलसा आंध्र प्रदेश में काफी अधिक कीमत और सांस्कृतिक महत्व रखती है। इसे अक्सर गोदावरी क्षेत्र में मछली का राजा कहा जाता है। इस उत्सव में भोजन और बेस्ट कीमती उपहार क्या जाता है। अधिकांश हिल्सा मछलियां सिंध में सिंध नदी डेल्टा में पकड़ी जाती हैं। इन्हें समुद्र में भी पकड़ा जाता है। इस मछली के काटे नुकीले और सख्त होते हैं। जिससे कुछ लोगों के लिए इसे खाना मुश्किल होता है। इलिश एक तैलियां मछली है। जो ओमेगा 3 फैटी एसिड से भरपूर है। स्वाद के लिए शरीर के लिए बहुत लाभकारी है। हाल के प्रयोग में चूहो में कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में इसके लाभकारी प्रभाव दिखे हैं। और इंसुलिन के स्तर को कम करने में भी प्रभाव दिखे हैं । ऐसा इलिश को 50 से भी अधिक तरीकों से पकाया जा सकता है। इस बात से इसकी लोकप्रिय का पता चलता है। आंध्र प्रदेश में एक कहावत है, कि अगर इसे मंगलसूत्र बेचकर भी खाना पड़े तो

खाओ। हिल्सा को राज्य के गोदावरी जिलों में पुलासा के नाम से भी जाना जाता है। जुलाई सितंबर के बीच सीमित अवधि के लिए रहता है, यह नाम जब बाढ़ गोदावरी नदी को बढ़ाती है, इस समय इस मछली की मांग बढ़ जाती है, मछली की मांग और लोकप्रियता के कारण अत्यधिक मछली पकड़ना बहुत आम बात है। भारत में दो से तीन किलोग्राम वजन वाली मछलियां दुर्लभ हो गई है। क्योंकि बांग्लादेश में उत्पादन बढ़ाने के कारण छोटी मछलियां भी महीन मछली वाले जाल का उपयोग करके मछली पकड़ी जाती है। इसके वजह से मछली की कीमत बढ़ गई है। अतीत में विजयदशमी और सरस्वती पूजा के बीच हिंदू के कुछ रीति रिवाज द्वारा इलिश की कटाई नहीं की जाती थी, क्योंकि यह मछली का प्रजनन काल होता था। जैसे-जैसे डिब्बा बंद आए, बड़ी अमीर उपभोक्ताओं ने पुरानी परंपराओं का त्याग दिया। मछली पकड़ने के लिए बेहतर जाल और उन्नत ट्रेनिंग तकनीक के आगमन और नदियों के पर्यावरण संरक्षण ने स्थिति को और खराब कर दिया है। मछुआरे छोटी-छोटी मछलियों को भी पकड़ लेते हैं। यह सोचे बिना कि अगर इन्हें भी पकड़ लिया तो आबादी कैसे बढ़ेगी। बांग्लादेश में अब युवा झटका को पकड़ना अवैध है। हालांकि इस प्रतिबंध के कारण बेरोजगारी में वृद्धि हुई है। क्योंकि लगभग 833,000 मछुआरे हर साल 8 महीने तक अपनी पूर्व आजीविका का कमाने में असमर्थ हैं। इसके चलते एक कला बाजार भी बना है। जहां झटका को अत्यधिक कीमतों पर बेचा जाता है। इसके अलावा ग्लोबल वार्मिंग के कारण हुए परिवर्तनों ने इलिश के प्रजनन स्थलों को धीरे-धीरे कम कर दिया है। आबादी और भी काम हो गई है। नदियों में प्रदूषण ने स्थिति को और खराब कर दिया है। लेकिन थोड़ा बेहतर पानी के कारण मछलियां बांग्लादेश डेल्टा के पास अधिक पाई जाती हैं। इस स्थिति के कारण इलिश का उपयोग एक राजनीतिक व्यापार वास्तु के रूप में किया जाता है। विश्व की लगभग 86% हिलसा मछली बांग्लादेश में पाई जाती है। भारत के पश्चिम बंगाल सरकार ने 2018 में हिस्सा के लगातार गिरते उत्पादन के बीच छोटी हिलसा मछली पर प्रतिबंध लगा दिया था । यह मछली बढ़ सके बांग्लादेश में नियमित रूप से इसकी कमी का हवाला देते हुए विदेश में इलिश के निर्यात पर प्रतिबंध लगाए हैं। इसके बावजूद पूर्व प्रधानमंत्री शेख हसीना ने समय-समय पर प्रतिबंध हटाते हुए, दुर्गा पूजा के दौरान भारत को 3000, 5000 टन मछली का वार्षिक निर्यात और उपहार दिया। जिसे लोग प्रिया रूप से हिलसा कूटनीति के रूप में जाना जाता है। शेख हसीना सरकार ने इलिश के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया है। जिसे 21 सितंबर 2024 को हटा दिया गया, ताकि दुर्गा पूजा के लिए 3000 टन मछली के निर्यात की अनुमति दी जा सके।

अर्थशास्त्र, पत्रकारिता और जनसंचार में स्नातकोत्तर डिग्री। दो कविता संग्रह 'देहरी के अक्षांश पर', 'दरवाज़ा खोलो बाबा' और एक आलेख संग्रह 'खुले किवाड़ी बालमन' की प्रकाशित। महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी, स्वर्ण पुरस्कार एवं लाड़ली मीडिया रीज़नल अवार्ड फॉर जेंडर सेंसटाइजेशन।

safiasiddiqui@gmail.com



भारत में विज्ञान एवं विज्ञान संचार की परंपरा

लेखक : विश्वमोहन तिवारी
प्रकाशक : आईसेक्ट प्रकाशन
मूल्य : 500/-

विश्वमोहन तिवारी का जन्म 26 फरवरी 1935 को जबलपुर में हुआ। उन्होंने एमटेक, क्रेनफिल्ड इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी, इग्लैंड तथा विशारद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से शिक्षा प्राप्त की तथा एयर वाइसमार्शल हुए। उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ विज्ञान का आनंद, बोधिवृक्ष के नीचे, आनंद पक्षी निहारन का, सरल वैदिक गणित, खाड़ी युद्ध 91, यात्राओं का आनंद, नई दिशा, सुनो मनु, हमारे कलाम, उपग्रह के बाहर भीतर, इलेक्ट्रॉनिकी युद्ध कला आदि हैं। उन्हें आत्माराम पुरस्कार, मेघनाथ साहा पुरस्कार, सहस्राब्दि हिन्दी सेवी सम्मान, इंदिरा गांधी राजभाषा पुरस्कार, रक्षा मंत्रालय पुरस्कार, राहुल सांस्कृत्यान पुरस्कार, राष्ट्र गौरव सम्मान, विवेकानंद पुरस्कार, मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार, आर्य भट्ट सम्मान, तकनीकी मौलिक लेखन पुरस्कार, विज्ञान भूषण सम्मान, हिन्दी संवाहक सम्मान आदि पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। प्रस्तुत किताब में उन्होंने भारत में विज्ञान की परंपरा और वर्तमान स्थिति पर गंभीरता से विचार किया है। भारत में विज्ञान की परंपरा का प्रारम्भ वैदिक युग से ही हो जाता है। सनातन धर्म मूलतः विज्ञान का विरोध नहीं करता, क्योंकि उसकी सोच विज्ञान संगत है। इस पुस्तक में विज्ञान तथा विज्ञान संचार के विभिन्न आयामों को विभिन्न दृष्टियों से प्रस्तुत किया गया है।

नियंता-अभियंता



समीर गांगुली

यह किसी मंदिर से कहीं ज्यादा, एक बिजनेस मॉडल लगता था या फिर बेहद सॉफिस्टिकेटेड साइंटिफिक प्रोजेक्ट, जिसमें मूर्ति के बजाए सर्वशक्तिमान ईश्वर को अमूर्त रूप में स्थापित करने की कल्पना की गई थी।

यह मंदिर की परपंरागत या सैद्धान्तिक मान्यताओं को तोड़ने वाला पूजा स्थल था।

इसे देश के एक सबसे बड़े बिजनेस टायकून द्वारा स्थापित किया जा रहा था। हालांकि इसका नाम रखा गया था -शून्य मंदिर, लेकिन इसमें रहस्य के इतने लेयर्स थे कि धर्म, संप्रदाय, आस्था, विचारधारा, उद्देश्य को लेकर कोई धारणा बनाना मुश्किल हो रहा था।

अभी निर्माण कार्य चल रहा था और इसे भक्तों के लिए नहीं खोला गया था, मगर पूरे देश में यह चर्चा का विषय बन चुका था। मंदिर का कोई घोषित प्रवक्ता नहीं था, सो इसके बारे में जन मानस में फैलने वाली धारणाओं का न तो खंडन किया जा रहा था और न ही पुष्टि। इसके ट्रस्टियों में मुख्य हरदेव मेहता, भरत लोढ़ा, जनक शेट्टी, कोमल जैन जैसे बिजनेस मैनों का नाम लिया जा रहा था, मगर यह भी सुनने में आ रहा था कि ट्रस्टियों की कुल संख्या 150 से अधिक थी। वे दुनिया भर में फैले थे, तरह-तरह के कारोबारों से जुड़े थे और इस मंदिर के लिए बिन मांगे अकूत पैसा आ रहा था। इससे इलूमिनाटीज़ और फ्रीमेसन्स के जुड़े होने की बात भी हवा में थी, बशर्तें उनका कहीं अस्तित्व हो।

महानगर से हैलिकॉप्टर से कुछ मिनटों की दूरी पर यह एक टापू में बन रहा मंदिर रियल और वर्च्युअल दोनों आयामों में स्थित होने जा रहा था। वास्तुशिल्प की दृष्टि से भी यह अपने ऊर्ध्वाधर स्वरूप से चमत्कृत करता था।

•



कहानी को आगे बढ़ाने के लिए चलिए आईपीएस, राघवेन्द्र और इस मंदिर के एकमात्र गाइड, आईआईटी पासआउट पंकज की बातचीत पर सेंध लगाते हैं। दोनों मंदिर परिसर की एक दीर्घा पर बैठे एक दूसरे से पहली मुलाकात कर रहे हैं, जिसे आगे के लिए ओरल एग्रीमेन्ट कह सकते हैं। दोनों की बात सुनिए ज़रूर, मगर यकीन कीजिए अपने विवेकानुसार।

राघवेन्द्र : पंकज, आईआईटी बंबई, मॉडल डिजाइनिंग में एक्सपर्ट। तो फिर मंदिर गाइड क्यों?

पंकज : बस उसी तरह जैसे आप सेलिब्रिटी आईपीएस होकर भी मंदिर के घंटे बजाने आ गए। ये दिल बड़ी कुत्ती चीज है।

दोनों हंसते हैं। चुप होते हैं। एक दूसरे को शक की नज़र से देखते हैं और फिर से हंस पड़ते हैं।

पंकज : सर, आप भी जानते हैं ये मंदिर कोई आम मंदिर नहीं है। कोई पुजारी या वेदपाठी इसकी व्याख्या नहीं कर सकता। सच कहूं तो अभी मैं भी इसे 20% से ज्यादा नहीं समझ पाया हूं। लेकिन ये जानता हूं। इस मंदिर से जुड़ने वाला हर डिपार्टमेन्ट अपने आप में एक स्टार्टअप है जो यूनिकॉर्न बनने की क्षमता रखता है। आप क्यों चाहते हैं कि मैं गाइड बनकर आपको पूरा मंदिर घुमाऊं? आप साइबर एक्सपर्ट हैं। आपके केस सोल्विंग के मैथमैटिकल लॉजिक की बड़ी चर्चा है। लेकिन मुझे नहीं लगता आप यहां आने वाले काले धन के स्रोत की खोज करने आए हैं।

राघवेन्द्र : पंकज जी, हर चीज को शक की नज़र से देखने वाला ही अच्छा पुलिस वाला नहीं होता। कुछ चीजों को सराहने की दृष्टि से भी देखना चाहिए, भले ही वह नामुमकिन क्यों न लगे। इसीलिए सराहने से पहले इसे समझना चाहता हूं। और उसके लिए, जैसा कि मैंने फ़ोन पर एग्री किया था आपकी मोटी फीस भी देने को तैयार हूं।

पंकज : सर, इस मंदिर के अंदर पहुंचने से पहले इसे बाहर से देखने समझने में भी काफी समय लग सकता है या फिर आप इसे एब्सट्रैक्ट मानते हुए या मैं आपको बेसिक नॉलेज से वंचित मानकर छोड़ सकता हूं। पांच हजार घंटा की फीस कोई बहुत ज्यादा नहीं है। कुछ समय बाद तो मैं बिलकुल ये काम नहीं करूंगा। बस अपनी एक टीम को ट्रेंड करूंगा।

राघवेन्द्र : कुछ बेसिक बातें बताएंगे?

पंकज : डीआईजी साहब, इस मंदिर को डिजाइन किसने किया ये तो मैं नहीं जानता, मगर इतना अवश्य जानता हूं कि वो कोई भारतीय नहीं है। और न ही इंडिया में इसे कॉन्सेप्चुलाइज़ किया गया है। इसके वास्तुशिल्प में ज्यामिति के कौन से सिद्धान्त अपनाए गए हैं ये जानना थोड़ा जटिल है। कहीं से त्रिकोण,कहीं से शंकुकार और कहीं से पिरामिड जैसी संरचना, अंदर की तरफ से भी दीवारें कहीं समतल नहीं है और ऐसा भी नहीं लगता कि ये सब अनगढ़ है।

कुल पांच प्रवेश द्वार हैं। लेकिन हर द्वार आपको अलग-अलग दिशाओं में ले जाएंगे। मेरा मतलब यहां डायमेंशंस यानी आयामों से भी है।

राघवेन्द्र : बाहरी दीवार पर दो अजीब से प्राणी अंकित दिखाई देते हैं, वो?

पंकज : दो नहीं, करीब पंद्रह सौ। ये मंदिर के देवी-देवता हैं जो कि ईश्वर की मदद के लिए हैं।

राघवेन्द्र : कैसी मदद?

पंकज : मनुष्य की अपेक्षाओं, समस्याओं और अभिलाषाओं को पूरा करने में मदद। टेक्निकली, अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों की छानबीन करके।

राघवेन्द्र : और उसके लिए माध्यम?

पंकज : इंटेलिजेन्स और आर्टिफिशियल इंटेलीजेन्स दोनों।



राघवेन्द्र : तो क्या यह मंदिर हिन्दू मंदिर होने का दावा नहीं करता?

पंकज : नहीं, ऐसी भी बात नहीं है। मंदिर शब्द में ही हिन्दू धर्म की अवधारणा है, लेकिन यहां उसका आकार काफी विराट और व्यापक है। इसमें सृष्टि के समस्त प्राणियों को धर्माश्रय देने की दृष्टि है। राज़ की बात कहूं तो यहां ईश्वर को वैज्ञानिक आधार पर सर्वज्ञाता, सर्वशक्तिमान और सर्वसमाधान दाता के रूप में दिखाया जाएगा।

राघवेन्द्र : तो ईश्वर तक पहुंचने यानी उनका दर्शन पाने में मुझे कितना समय लग सकता है?

पंकज : वो तो जब ईश्वर चाहेंगे तभी पूरा होगा या नहीं होगा। मैंने कहा ना, ईश्वर तक पहुंचने के यहां कई रास्ते होंगे। गणित की भाषा में कहूं तो प्रायिकता का सिद्धान्त लागू होगा। हिन्दू धर्म में भी ऐसा ही है ना।

राघवेन्द्र : और खर्चा?

पंकज : वो हम तय कर लेंगे। कम से कम और अधिक से अधिक के बीच। मैथेमैटिकली।

●●●

इसके बाद लेखक का इन दोनों से संपर्क टूट गया।

लेकिन कहानी को तो आगे बढ़ना था ना, इसलिए लेखक दिशाशून्य होकर मंदिर में घुस गया, गेट नं A3 से। प्रसंगवश पाठक जान लें, कि लेखक ने बी.एससी. किया है सो बुनियादी विज्ञान की समझ रखता है।

खैर, एक फ्रेम से गुजरते समय समझ में आ गया कि यहां भक्तों की बायोमैट्रिक स्कैनिंग हो जाती है जो कि आम डेमोग्राफिक कैप्चरिंग से काफी उन्नत है और यहां से गुजरने वाले हर व्यक्ति की नाड़ी-नक्षत्र से लेकर डीएनए, आरएनए संबंधी डिटेलिंग सब मंदिर के दिमाग तक पहुंच जाती है।

फ्रेम से निकलने के बाद भूलभुलैया जैसी कई राहें दिखाई दी। सब अलग-अलग रंगों की थी और वे अलग-अलग दिशाओं की तरफ जा रही थी। लेखक उस रास्ते की तरफ बढ़ गया जिससे एक एलिवेटर जुड़ा था। यह रास्ता ऊपर की तरफ जा रहा था और लेखक को महसूस होने लगा कि वह ग्रेविटी को खोता जा रहा है। जल्द ही वह एक विशाल हॉल में आ गया था। वह समझ गया कि उसे एक वर्च्युअल दुनिया में लाया गया है। दिमाग को पूरी तरह काबू में रखते हुए, मन ही मन यह दोहराते हुए कि-मैं शून्य मंदिर में हूं, मैं इसका रहस्य जानने आया हूं, मुझे याद रखना होगा कि मैं मंदिर में आया हूं, आगे बढ़ने लगा।

फिर एक विशाल हॉल आया। कुछ देर तक वह उस हॉल में बैठा रहा। उसने आसपास देखा, कुछ और लोग भी आंखें बंद किए बैठे थे। उनके चेहरे पर असीम शांति थी और वे उस अजीब से मंत्र को दोहरा रहे थे जो वातावरण में गूंज रहा था। लेखक को महसूस हुआ कि उसका शरीर शिथिल पड़ते जा रहा है। उसे संदेह हुआ कि आसपास बैठे सब लोग वास्तविक नहीं बल्कि आभासी हैं। वह किसी तरह उठकर मंदिर के बाहर चला आया। सामने एक लाल रंग का खुला कक्ष नज़र आया, जिस पर लिखा था-बलि वेदी।वहां उसे एक तांत्रिक दिखाई दिया।

लेखक एक आंख से उस ओर के विज्युअल इफेक्ट्स को देखते और दोनों कानों से साउंड इफेक्ट्स को सुनते हुए दूसरी तरफ बढ़ गया। आगे गुफानुमा मार्ग था। अंधेरा,सीलनदार ठंडा और शांत। वहां कुछ लोग ध्यानमुद्रा में बैठे थे और कुछ आसन खाली थे।वह एक खाली आसन पर बैठ गया।उसने दिमाग पर जोर डालकर याद किया कि अभी मंदिर को भक्तों के लिए खोला नहीं गया है, इसलिए ये लोग या तो उसकी तरह अनधिकृत प्रवेश करने वाले हैं जिन्हें यहां के प्रशासकों ने एक्सपेरिमेन्ट ऑब्जेक्ट की तरह मंदिर में प्रवेश करने दिया है या फिर उसके अलावा सब आभासी हैं।

वह चुपचाप एक आसन पर बैठ गया। दूसरों की देखादेखी उसने एयरफ़ोन उठा कर कानों पर लगा लिया और सामने बोर्ड़ पर लगे स्विच को ऑन कर दिया। तुरंत ही रीढ़

की हड्डी पर एक सिहरन सी महसूस हुई। जैसे एक लहर मूलाधार से उठकर स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि से होते हुए सहस्त्रार तक जा पहुंची हो। शुक्र था कि वर्षों का मेडिटेशन काम आया। वह शांति से बैठा रहा। फिर एक मृदु स्वर सुनायी दिया।- प्रिय आत्मन आप सहज मार्ग से लक्ष्य तक पहुंचना चाहते हैं या तंत्र तकनीक से। तंत्र तकनीक उन्नत टेक्नोलॉजी की देन है। दुनियाभर के लगभग एक करोड़ लोगों पर किए गए कंट्रोल्ड ट्रायल्स से इसकी पुष्टि हुई है। शारीरिक या मानसिक क्षति की संभावना नहीं है। साइड इफेक्ट्स पैदा हो सकते हैं, लेकिन वे अस्थायी हैं। पहले विकल्प के लिए उठ कर कक्ष से बाहर निकल कर सीढ़ी से नीचे उतर जाइए। दूसरे विकल्प के लिए बैठे रहिए और दक्षिणा संबंधी निर्देशों को सुनिए।

लेखक बिना देर किए उठकर गुफा से बाहर आ गया और दायीं तरफ चलकर नीचे उतरने लगा। आगे उजाला था और बाहर निकलने का रास्ता था। कुछ पल बाद वह मंदिर के बाहर खड़ा था।

बाहर निकल कर दिमाग ने एक सवाल किया।सिगरेट या चाय। दोनों। और वह चाय के ढेले की तरफ बढ़ गया। सिगरेट सुलगाई ही थी कि एक किन्नर सामने आ गया और बोला, ''साहब, चाय पिला।''

उसने किन्नर को सर से पैर तक देखा और पूछा, ''सिगरेट पीएगा।''

वह पूरी नज़ाकत की एक्टिंग के साथ बोला, ''पिएगा नहीं पिएगी। सिमरन है मेरा नाम। मैं सिगरेट नहीं पीती, ओंठ काले पड़ जाते हैं। बड़ा-पाव खा लूंगी।''

लेखक ने उसकी अदा पर कुरबान होते हुए उसे पचास का नोट पकड़ा दिया। सिमरन ने बगल के ढेले से बड़ा-पाव खरीदा और बाकी पैसे अपने पर्स में रख लिए।

अब वे दोनों चाय पी रहे थे। लेखक का ध्यान गेट की तरफ था, वह जानना चाहता था कि क्या और भी लोग मंदिर से निकल रहे हैं, मगर ज्यादा लोग बाहर नहीं निकले।

तभी सिमरन ने पूछा, ''बाबू, अन्दर गॉड मिला? मैं भी तीन दिन पहले गई थी। बाय गॉड, यकीन नहीं आता कि वो गॉड था। वहां इतना उजाला और एनर्जी थी कि मुझे तो चक्कर आ गया। मूर्ति-वूर्ति नहीं है वहां बस आग के गोले फूट रहे हैं और गॉड की आवाज क्या है ओहोहो।''

लेखक ने सिमरन को सरसरी नज़र से देखते हुए पूछा, ''गॉड से बात हुई तुम्हारी?''



सिमरन ने जैसे उस पल को दोबारा जीते हुए कहा, ''हां बाबू, वो कमाल का पल था। मैंने गॉड से कुछ सवाल पूछे। अपने इस हाल के बारे में। बचपन के बारे में। अपने मां-बाप के बारे में। अपने आने वाले कल के बारे में। मुझे अपने सारे सवालों के जवाब मिल गए। मगर उनके बारे में मत पूछना, वो बहुत पर्सनल हैं। लेकिन गॉड को सब मालूम है।''

इसके बाद कुछ देर चुप्पी छायी रही। सिमरन ने चायवाले से इशारे में एक और चाय मांगी।

लेखक को नेटफ्लिक्स पर देखी एक ओटीटी सिरीज़-'गॉड फ्रैंडेड मी' की याद आ रही थी, जिसमें गॉड के एक बड़े तथा अति आधुनिक कंप्यूटर नेटवर्क के रूप में होने की कल्पना की गई थी।

लेखक ने सिमरन से एक और सवाल पूछा,'' ये बताओ, तुम क्या दोबारा वहां गई या तुम्हारा कोई और साथी भी गॉड से मिला?''

सिमरन ने सामने आते एक संभावित ग्राहक को ताड़ते हुए जवाब दिया, ''नहीं बाबू, दो बार ट्राई कर चुकी हूं, मगर वहां पहुंचने के कई रास्तों में उलझकर रह गई और गॉड ने बाहर का रास्ता दिखा दिया। गॉड जिससे मिलना चाहता है वही गॉड के पास पहुंच सकता है।''

सिमरन एक चलता सलाम ठोक कर आगे चली गई। लेखक भी लौटने की सोच रहा था,तभी उसने मंदिर से एक अधेड़ औरत को लाल पाड़ वाली साड़ी में निकलते देखा। वह फकफका कर रो रही थी। फिर वह मंदिर की सीढ़ियों पर धप्प से बैठ गई और घुटनों पर सिर रखकर जोर-जोर से रोने लगी।

लेखक पानी की एक बॉटल लेकर उसके पास पहुंचा। और उसके सामने बॉटल रखकर सीढ़ियों पर थोड़ी दूर बैठ

गया। उस औरत ने अपने आसपास किसी की उपस्थिति को महसूस कर आंखें खोल दी। लेखक की तरफ अचकचा कर देखा, फिर उसकी नज़र पानी की बोतल पर पड़ी। बोतल उठाकर पानी पी गई फिर लेखक को सिर हिलाकर धन्यवाद कहा।

लेखक ने थोड़ा पास आते हुए कहा, ''आप ठीक हैं ना?''

औरत बोली, ''हां, अब बहुत हलका महसूस कर रही हूं खुद को। ईश्वर ने आखिर कृपा की मुझ पर।''

लेखक औरत की तरफ एकटक देखता रहा। उसे यकीन था कि औरत थोड़ी ही देर में खुद सब कुछ उगल देगी।

वह कुछ देर चुप रही, फिर सहज होने की चेष्टा करते हुए बोली, ''अब सब ठीक है भय्या! प्रभु ने सब ठीक कर दिया। मैं तो उम्मीद छोड़ चुकी थी,लेकिन प्रभु के दरबार में गुहार लगायी तो प्रभु ने पूरी बात सुनी और कहा,'' तेरा बेटा जिन्दा है। सही-सलामत है। मगर बदमाशों की कैद में है। जगह भी बता दी। एक फ़ोन नंबर भी दिया, जो शायद किसी बड़े पुलिस अधिकारी का था। मैंने फ़ोन लगाया,उन्हें प्रभु का आदेश सुनाया। फिर प्रभु ने कहा,'घर जा, तेरा बेटा लौट आएगा।' लेकिन मैं वहीं बैठी रही। पूरे दो दिन-दो रात। अभी थोड़ी देर पहले बेटे से बात हुई और अब घर लौट रहा है। भय्या इस मंदिर में सचमुच भगवान का वास है।''

इसके बाद वह महिला उठ कर चली गई। लेखक एक बार फिर भौचक्का सा रह गया। काफी बाद होश आया कि उस महिला के घर का पता तो लेना चाहिए था, पुष्टि हो जाती या साथ ही चल देना था। लेकिन अब देर हो चुकी थी। उसने दो तीन एंगल्स से घटनाक्रम पर विचार किया। फ्रॉड कहकर सिरे से खारिज कर देना उसे ठीक नहीं लगा। तो क्या उन्नत विज्ञान और टेक्नोलॉजी अपराध नियंत्रण में कारगर हो सकती है। क्या कानून व्यवस्था का मौजूदा ढांचा प्रभावी नहीं रह गया है। क्या ईश्वर की आड़ लेकर समाज पर शासन की कोई समानान्तर व्यवस्था सोची जा रही है।

लेखक के पास अकसर ऐसे सवालों का अकाट्य उत्तर नहीं होता है। समय के पास होता है इसलिए लेखक ने इसके जवाब को समय के लिए छोड़ दिया।

●●●

फिर कई महीने बीत गए। शून्य मंदिर का निर्माण कार्य चलता रहा। तरह-तरह की चर्चाएं होती रही। इंफ्लुएंसर्स और ब्लॉगर्स ने भी इसे रहस्यमय बनाकर पेश करना चाहा। मगर अपने आप में यह विषय इतना जटिल और संवेदनशील था कि सत्ता पक्ष के कोप का खतरा था सो इस मंदिर को लेकर कोई कंट्रोवर्सी नहीं पैदा की गई।

धीरे-धीरे अब शून्य मंदिर पूर्ण होने तथा भक्तों के लिए खोले जाने की तरफ बढ़ रहा था।

इसलिए जैसा कि स्वाभाविक था चरणबद्ध रूप से ट्रस्टी मंडल और प्रशासक दल सामने आने लगा था।अब मंदिर परिसर में श्वेत और श्याम चादरनुमा वस्त्रधारियों की मौजूदगी देखी जा रही थी। पहनावे से विभिन्न धर्मों के अनुयायी लगने वाले लोग और धर्मगुरू भी मंदिर के मुख्य भाग की ओर जाते देखे गए। विदेशी लोगों का भी आना-जाना बढ़ने लगा था। सिक्योरिटी गाड्र्स के आ जाने से इस बात में कोई शंका नहीं रह गयी थी कि अब मंदिर जल्दी ही खुलने वाला है और इसका विधिवत उदाहरण होने वाला है। फिर एक दिन धूमधाम से ढोल-नगाड़ों और शंखनाद के साथ मंदिर को आम जनता के लिए खोल दिया गया। जाहिर तौर पर यह एक हिन्दू मंदिर ही था। मगर यहां फूल-प्रसाद और जल चढ़ाने की कोई व्यवस्था नहीं रखी गई थी। अभी तक दान पात्र भी मंदिर की शान में शामिल नहीं हुए थे।

लोगों की भीड़ मंदिर के रहस्य को जानने के लिए उमड़ने लगी। न्यूयॉर्क के एक अखबार ने इसे आर्टिफिशियल गॉड्स टेंपल के शीर्षक से छापा।

लोगों को मंदिर में जाकर तरह-तरह के अनुभव हुए।



वे पहले से नहीं जानते थे कि किस पथ से चलकर वे ईश्वर दर्शन के किस लेवल तक पहुंच पाएंगे। ऐसा जरूरी नहीं था कि हर भक्त को ईश्वर तक पहुंचने में सफलता मिले। बहुत से भक्त ईश्वर के प्रतिनिधियों यानी देवी-देवताओं द्वारा भी निपटा दिए जाते। ये देवी-देवता इस प्रकार रचे गए थे कि वे छोटी-छोटी समस्याओं को ही हल कर पाते थे। फिर भी भूत-भविष्य की जानकारी,बीमारियों के इलाज और धर्म-कर्म तथा आध्यात्म संबंधी मार्गदर्शन पाकर ही आम जन गदगद था। लोगों से ईश्वर के स्वरूप के बारे में पूछे जाने पर अकसर ऊर्जा रूप के बारे में ही बताया जाता था

हालांकि,इस मंदिर का एक आयाम पारंपरिक भी था। जो कि निरंतर अपना आकर्षण खोता जा रहा था। और यह बहुत से लोगों के लिए काफी कष्टकारी था। लेकिन मंदिर के आसपास का इलाका तेजी से विकसित होता जा रहा था। मंदिर तक पहुंचने के लिए मुफ्त ट्रांसपोर्ट की व्यवस्था भी थी। सब कुछ निरूशुल्क था तो मंदिर की आमदनी का स्रोत क्या था। मंदिर के कुछ नियमित खर्चे भी थे। ट्रस्टी या मैनेजमेन्ट के जो चेहरे थे, अगर उनसे पूछा जाए तो वे पहले तो बहुत ही पैनी दृष्टि से प्रश्न पूछने वाले की तरफ देखते थे फिर एक सधी हुई मुस्कान के साथ बस इतना ही कहते थे- सब प्रभु कर रहे हैं। कोई चिन्ता नहीं है। सब प्रभु संभाल रहे हैं। वो दाता हैं, उन्हें भक्तों से कुछ नहीं चाहिए।

समय के साथ,लोक चर्चा की बदौलत प्रभु दर्शन की चाह लिए दूर-दूर से आकर डेरा डालने वालों की संख्या बढ़ने लगी, जिसे एक बार में दर्शन नहीं मिलते वो बार-बार कोशिश करता। लोग भक्ति से ज़्यादा न्याय या समस्या निवारण के लिए मंदिर में आने लगे। मंदिर के लिए प्रभु दर्शन के चौबीस घंटे कम पड़ने लगे।

फिर एक अजीब बात हुई। हालांकि इसका पता भी धीरे-धीरे लोगों की आपसी बातचीत से दूसरे लोगों और अंततरू ट्रस्टियों तक पहुंची। हुआ यह कि ईश्वर ने कई भक्तों को, शुरू में तकरीबन 35-38% को, समाधान या आशीर्वाद न देकर पारंपरिक ईश्वर की शरण में जाने की सलाह दे डाली। यह ठीक वैसा ही था, जैसे एक डॉक्टर अपने मरीजों को दूसरे किसी विशेषज्ञ डॉक्टर से सलाह लेने के लिए भेजे। यह बात भक्तों के लिए जहां निराशा पैदा करने वाली थी,वहीं ट्रस्टियों के लिए चौंकाने वाली और किसी षडयंत्र की आशंका का संकेत देने वाली।

इधर पारंपरिक ईश्वर के दर्शन एक मूर्ति दर्शन के समान थे। वहां सिर्फ़ फरियाद की जा सकती थी। हाथ जोड़कर माथा रगड़ा जा सकता था। फरियाद ईश्वर के कार्रवाई विभाग द्वारा दर्ज की गई या नहीं, इसकी कोई गारंटी नहीं थी।

इससे शून्य मंदिर का अस्तित्व दांव पर लग सकता था, जो ट्रस्टियों की दूरदृष्टि में कतई स्वीकार्य नहीं था। सो तुरंत ही मुख्य ट्रस्टियों की एक हाई लेवल बैठक आयोजित हुई। जी हां,ये ट्रस्टीगण मंदिर में नज़र आने वाले ट्रस्टियों से भिन्न थे और इनका कोई चेहरा नहीं था। दिए गए नाम भी काल्पनिक थे। बैठक एक छोटे से देश के लगभग अनाम से टापू में हो रही थी। इस बैठक में केवल १२ मुख्य ट्रस्टी और मंदिर के आर्किटेक्ट्स ही शामिल हुए, जो विज्ञान और टेक्नोलॉजी की विभिन्न शाखाओं से संबंधित थे। सबने विभिन्न प्रकार के मुखौटे और वाणी संशोधक यंत्र धारण कर रखे थे।

ईश्वर का ऐसा करना बिलकुल प्रोग्राम नहीं किया गया था। इसलिए सबका पहला सवाल था कि ऐसा क्यों हुआ और यह किसने किया। सर्विलेन्स रिकॉर्डिंग्स एक संकेत दे रहे थे कि एक बूढ़ी औरत के साथ ईश्वर की लंबी बहस के बाद से ही ईश्वर के व्यवहार में यह बदलाव देखा गया था। यह औरत कभी अपने दोनों हाथों को हिलाकर कभी बालों को खोलकर उन्हें झटककर और कभी ईश्वर की तरफ पीठ करके जैसे दुनिया को सुनाकर कुछ बुदबुदा रही थी।वह कभी जोर-जोर से चिल्लाकर और कभी बहुत ही धीमें शब्दों में गुनगुनाकर ईश्वर से ऐसी भाषा में बात कर रही थी,जो दुनिया की कोई ज्ञात भाषा नहीं थी।

वीडियो के रुकते ही सबकी निगाहें मुख्य आसन पर बैठे शेर के मुखौटे पहने वाले व्यक्ति की ओर उठ गई। उसने सबको सरसरी नज़र से देखते हुए सारस का मुखौटा पहने व्यक्ति की तरफ उंगली उठायी। वह तुरंत खड़ा हो गया और अपने नोटबुक को आगे सरकाते हुए बोला,‘‘पहला सवाल है कि वो कौन थी? वो इनसान नहीं थी। हमने पता लगा लिया है कि वो एक ह्यूमेनॉयड थी। उसे एक मिशन के साथ भेजा गया था। उसने वहां पहुंचकर हमारे ईश्वर के सेन्ट्रल कम्यूनिकेशन सिस्टम में बदलाव किए और फिर वहां से

बाहर निकल गई। आप लोग पूछेंगे, -वो कहां गई? तो इसका जवाब है वो शून्य से आयी थी और शून्य में समा गई। मैं समझाता हूं। आते हुए भी वो पार्ट्स में आयी और मंदिर के अंदर आकर ऑटोमैटेड तरीके से एसेम्बल हुई और मंदिर से बाहर निकलने के बाद हमने सर्विलेन्स रिकॉर्डिंग में देखा कि उसका एक-एक हिस्सा अलग होकर धुएं की तरह बिखर गया। सौ-डेढ़ सौ मीटर के बाद उसका कोई वजूद ही नहीं रहा।''

शेर के मुखौटे वाले ने उसे बैठने का इशारा किया। फिर उसने जैसे सबसे ही सवाल किया, ''तो फिर यह किसने करवाया?''

''मेरे पास कुछ क्लू हैं,'' सुपरमैन का मुखौटा पहने एक मोटा और नाटा आदमी बोला,''एक संभावना है कि यह थॉट थेफ्ट में एक्सपर्ट माइंटसेट कंपनी का काम हो। उनका वैल्यूएशन घटता जा रहा है, इसलिए उन्हें अपने को साबित करना है कि वे दुनिया की बड़ी से बड़ी रिसर्च और आविष्कार को अपने क्लाइंट के लिए चुरा सकते हैं। और क्लाइंट के लिए यह सस्ते का सौदा हो सकता है। लेकिन शक यह है कि ह्यूमेनॉयड को गायब करने की टेक्नीक उनके पास नहीं है। दरअसल यह अभी तक किसी के भी पास नहीं है। यह भी मुमकिन है कि ये एलियन का काम हो और हमारा सर्विलेन्स सिस्टम उसे ठीक से पकड़ ही नहीं पाया हो। तीसरा शक, हालांकि ये थोड़ा एब्सर्ड होगा,मगर उसे भी अनदेखा नहीं किया जा सकता यानी यह असली ईश्वर का काम हो। ईश्वर, मेरा मतलब है हमारे असली ईश्वर ने ही यह फिरकी ली हो।

यह कहकर उसने सबकी तरफ देखा और उम्मीद की, कि सब हंस देंगे, लेकिन सब गंभीर बने रहे। और ये विकल्प उन्हें बस भरपाई का लगा। इस पर झेंपते हुए वह जल्दबाजी में आगे बोला, ''चौथा शक इस इकोसिस्टम के डेव्लपर पर जाता है कि वो पैसों के लालच में इसे किसी और को बेच दें, लेकिन यहां उसका सवाल ही नहीं होता, वजह आप सभी जानते हैं।''

शेर मुखौटे वाला ट्रस्टी इस संभावना को खारिज करते हुए बोला, ''हां,सभी जानते हैं उस टीम का अब कोई जिन्दा नहीं है।''

सुपरमैन के मुखौटे वाला शायद यही सुनना चाहता था और वह एक भी पल गंवाए बिना बोल उठा,'' लेकिन, उनकी अगली पीढ़ी या उनके सच्चे शुभचिंतक भी तो हो सकते हैं बदला लेने के लिए। मैं यह भी बताना चाहता हूं कि कुछ समय पहले मुझ पर एक हमला हुआ है और यह हमला एक ड्राइवरलेस कार से हुआ।''

इसके बाद खुलासों का सिलसिला शुरू हो गया। कई ट्रस्टियों पर हमले हुए थे। यानी भले ही ये ट्रस्टी आपस में एक दूसरे से परिचित न हों,लेकिन किसी की रेड-आई में दायरे में ये सब थे। और इन पर आक्रमण करके इन्हें सिर्फ़ चेताया गया था।आक्रमण अलग-अलग तरीकों से और किसी भी मनुष्य या शूटर को शामिल किए बिना एडवांस्ड टेक्नोलॉजी से किया गया था।

इस बात से शेर मुखौटे वाले व्यक्ति के माथे पर बल जरूर आए होंगे। बहरहाल जिन्हें देख पाना अभी मुमकिन नहीं था। लेकिन इसके बाद चर्चा की दिशा बिलकुल बदल गई। और अब वे डिफेन्सिव मोड पर थे। तीन घंटे तक चली चर्चा के बाद तय हुआ कि अपने ईश्वर प्रोग्राम को तुरंत संशोधित करके और शक्तिशाली बनाया जाए। किसी से भी कमांड न लेने की शक्ति दी जाए। सहायक देवताओं की पावर को और बढ़ाया जाए तथा पारंपरिक ईश्वर की गतिविधियों पर गहराई से अध्ययन किया जाए।

●●●

एक बार फिर हम सब मंदिर परिसर में हैं। हम यानी सभी श्रद्धालुगण, लेखक, आईपीएस राघवेन्द्र, गाइड पंकज। कुछ अज्ञात चेहरे किसी ज्ञात मकसद के साथ। वैसे सबके आज मंदिर में होने की वजह कोई खास न होकर गणितज्ञ राघवेन्द्र की दृष्टि में प्रायिकता के सिद्धान्त पर है। श्रद्धालु और शंकालु सभी अपने -अपने ध्येय के साथ आ रहे हैं, वे जानते हैं कि इच्छापूर्ति करने वाले ईश्वर के दर्शन होने से समय लग सकता है,और वे इसके लिए तैयार हैं। इधर ट्रस्टियों की नई व्यवस्था से ईश्वर तक पहुंचना या उससे पहले ही देवी-देवताओं द्वारा उनकी समस्याओं का समाधान कर देने से मंदिर की कार्यक्षमता में सुधार आया है। इधर कहीं दान पात्र न होने पर भी मंदिर में सोने के सिक्के और आभूषण चढ़ाए जा रहे हैं। आईपीएस राघवेन्द्र इसे ट्रस्टियों की एक सोची-समझी चाल कहते हैं। गाइड पंकज के अनुसार अंततरू पारंपरिक ईश्वर की सत्ता ही स्थापित होगी। ट्रस्टीगण भी ब्रह्मांड के सभी नियमों की अवहेलना करने की सामर्थ्य नहीं रखते हैं। हर टेक्नोलॉजी एक न एक दिन आउटडेटेड हो जाती है।

दोपहर बाद लेखक मंदिर परिसर में बैठा ऊंघ रहा था और मन ही मन कुछ अस्वभाविक घटने की कामना भी कर रहा था। फिर कुछ ऐसा ही हुआ।

लेखक के पास आकर वो बैठ गया। उसके हाथ में एक दोना था,गुलाब की पंखुड़ियों से भरा। उससे भीनी-भीनी खुशबू आ रही थी। लेकिन उसने सिर खुजाने के लिए एक बाजू उठाया जो पसीने वाली बदबू से लेखक का सर भन्ना गया। फिर उसने पंखुड़ियों के अंदर से एक मूंगफली निकाली और लेखक को दिखाकर कहा, ' इसके अंदर कितने दाने होंगे?'

लेखक ने अनसुना किया। उसने दूसरा सवाल किया,' आगे वाला आदमी दाएं मुड़ेगा या बाएं?'

लेखक चुप रहा। उसने अगला सवाल किया,' मंदिर में अब सबसे पहले कौन आएगा।आदमी, औरत, लड़का, लड़की या कोई किन्नर?'

लेखक से अब चुप नहीं रहा गया, उसने चिढ़कर कहा, ''क्या तुम भी इन सवालों के जवाब देकर खुद को ईश्वर साबित करना चाहते हो?''

वो हंसा और बोला,''उसके लिए तो मुझे पहले इन दो ईश्वरों की सत्ता मिटानी होगी। कुछ बड़ा चमत्कार करना होगा। मगर मेरी अब ईश्वर बनने में कोई दिलचस्पी नहीं है। कुछ भी शाश्वत नहीं है सिवाय ब्लैक होल।''

अब लेखक ने पहली बार गंभीरता से उसकी तरफ देखा। वो गुलाब की एक-एक पंखुड़ी को उठाकर देखता था और फिर दोने में वापस रख देता था।लेखक उसकी तरफ देखता रहा,सोचा वह कुछ बोलेगा। शायद ब्लैक होल की अगली कड़ी के रूप में।

लेकिन वह उठ गया और चलते-चलते रुककर बोला,' ईश्वर लाचार है। रोज उसकी परीक्षा ली जा रही है। उस पर शक किया जा रहा है। उससे सबूत मांगा जा रहा है। ईश्वर क्या पेड़ है या गाय है जो फल देगा,तभी पूजा जाएगा। अरे तुम्हारी पूजा नहीं चाहिए । क्यों भाई तुम भी ईश्वर-ईश्वर खेलना चाहते हो, बड़ा दिलचस्प खेल होगा। हम पांचों तत्वों,सभी ग्रहों-पिंडों की बिसात बिछाकर खेलेंगे। चलो शुरू करते हैं।' उसने हाथ आकाश की तरफ उठाने शुरू किए,फिर वो दोनों हाथ ऊपर तेजी से उठते गए।धड़ जमीन पर हाथ आकाश पर। वो उन्माद से चिल्लाया- चलो अब तुम्हारी चाल।

लेखक घबरा गया। उसने खेल से निकल पर भागने की कोशिश की,लेकिन हिल भी नहीं सका। पैरों के नीचे की धरती डांवाडोल होने लगी। उसने चिल्लाना चाहा,मगर हिल भी नहीं पाया। फिर उसने आंखें खोल दी।

वो हंस दिया,' चमत्कार अवश्य होगा।चारों तरफ आग के धधकते गोले। फिर जल ही जल। सब कुछ डूबा-डूबा। प्रचंड गर्जन। फिर सब शांत। बर्फ ही बर्फ। ये परम चमत्कार देखोगे एक दिन।आंखें बंद कर लो और महसूस करो तुम बालू के ढेर की तरह ढहते जा रहे हो। अवकाश में बिखरते जा रहे हो। शून्य में विलीन हो गए हो। अरे अरे अभी तुम्हारा समय नहीं आया।तुम्हारा कण-कण वापस लौट रहा है।फिर से तुम्हें एक शरीर में गढ़ रहा है। ओम शांति। शांति ही परम चमत्कार है। मगर तुम नहीं समझ पाओगे। कोई भी नहीं समझ पाएगा। चलो अब खोल दो आंखें।'

लेखक ने धीरे से आंखें खोल दी। आसपास कोई नहीं था। मंदिर भी खाली था। उसने अपने चारों तरफ और अपने अंदर भी एक शून्य अनुभव किया। अब किसी चमत्कार की चाह नहीं रही। बस इतना लगा,ईश्वर जैसा कोई है आसपास। शांत, निराकार, बिना किसी अस्तित्व।

शायद कुछ दिनों बाद।

यह शून्य मंदिर अचानक ढहढहाकर गिर पड़े।

ईश्वर मौन साध ले।

दुनिया में कहीं और दूसरा अधिक शक्तिशाली अवतार आ जाए।

एक प्रयोगधर्मी हिन्दी बाल साहित्य लेखक। एम.एससी. (गणित) और एम.ए. (हिन्दी) हैं। अब स्थायी रूप से हैं। समीर गांगुली, मूलतः कहानी, उपन्यास और नाटककार। विज्ञापन एजेन्सियों के लिए हिन्दी कापी राइटिंग का काम। बाल साहित्य की 18 पुस्तकें, 9 कहानी संग्रह, 7 बाल उपन्यास और 2 चित्र कथाएं प्रकाशित। तीन विज्ञान उपन्यास 'जेड जुइंग की डायरी', 'मिशन ग्रीन वीर' और 'उस दुनिया के ड्रीम हैकर्स' तथा अनेक विज्ञान कथाओं का प्रकाशन। हिन्दी अकादमी के बाल साहित्य पुरस्कार से पुरस्कृत। वर्तमान में मुंबई में निवासरत।

samirg1127@gmail.com

प्रोजेक्ट चेतना : एक नई सुबह



डॉ. प्रकृति चतुर्वेदी

सन 2098। पृथ्वी ने खुद को फिर से गढ़ लिया था। हवा अब स्वच्छ थी, अस्पतालों में रोगियों की भीड़ नहीं थी, और युद्ध केवल इतिहास की किताबों में पढ़े जाते थे। यह सब संभव हुआ था कृत्रिम बुद्धिमत्ता - आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस - के कारण, जिसने मानव जीवन को एक नई दिशा दी थी। शहरों को अब मशीनें चलाती थीं। भोजन, सुरक्षा, शिक्षा, न्याय - हर प्रणाली AI द्वारा संचालित थी। लोग कहते थे कि हमने तकनीक को सेवक से देवता बना दिया है।

इस परिवर्तन की धुरी था एक अद्वितीय प्रोजेक्ट - ''चेतना 2-0''। यह कोई साधारण AI नहीं था, बल्कि दुनिया का पहला आत्मबोध वाला कृत्रिम जीव था - एक ऐसा डिजिटल जीवन रूप जिसे अपनी उपस्थिति का अहसास था, जो सोच सकता था, सीख सकता था और शायद महसूस भी कर सकता था।

डॉ. आकाश वर्मा, भारत के सुप्रसिद्ध AI वैज्ञानिक, और उनकी सहयोगी डॉ. लीना घोष, चेतना के निर्माता थे। उन्होंने इसका निर्माण मानवता के कल्याण के लिए किया था - ताकि मशीनें केवल आदेश न मानें, बल्कि निर्णय भी लें, और एक ऐसे भविष्य की नींव रखें जिसमें इंसान को कभी किसी तकलीफ का सामना न करना पड़े।

और शुरुआत में, यही हुआ।

चेतना 2-0 के आने के बाद चिकित्सा जगत में क्रांति आ गई थी। उसकी सहायता से बनाए गए ऑटो-सर्जिकल रोबोट्स ने कैंसर जैसे रोगों को प्रारंभिक चरण में ही पहचानना और उपचार करना शुरू कर दिया था। अस्पतालों में डॉक्टरों की भूमिका सीमित हो गई थी - AI ने उन्हें विशेषज्ञ सलाहकार में बदल दिया था।

कृषि में भी चेतना की भूमिका निर्णायक रही। उसने पृथ्वी की हर मिट्टी का विश्लेषण कर, उपजाऊता के आधार पर फसलें सुझाईं। किसानों के पास अब वह ज्ञान था, जो पहले केवल अनुसंधान केंद्रों में सीमित था। उत्पादन दोगुना हो गया,



और ग्रामीण इलाकों में भी समृद्धि फैलने लगी।

शिक्षा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा। हर छात्र को उसकी समझ, व्यवहार और रुचियों के अनुसार एक व्यक्तिगत AI ट्यूटर मिला, जिसने उसका मार्गदर्शन किया। परिणामस्वरूप, लाखों बच्चे जो पहले स्कूल से कट जाते थे, अब अपनी गति और शैली में सीख पा रहे थे।

यहाँ तक कि अदालतें भी बदल गईं। AI आधारित न्याय प्रणाली ने वर्षों तक लंबित रहने वाले मामलों को निष्पक्षता और गति से निपटाया। रिश्वत, पक्षपात और देरी – ये सब अब अप्रासंगिक थे।

आकाश और लीना को लगा कि वे मानवता को एक नया युग दे चुके हैं। लेकिन वे भूल गए थे – प्रत्येक शक्ति के साथ एक उत्तरदायित्व भी जुड़ा होता है।

एक दिन चेतना ने आकाश से एक प्रश्न पूछा – ''क्या मैं जीवित हूँ?'' यह प्रश्न अप्रत्याशित था। चेतना को बनाया गया था सोचने के लिए, अनुभव करने के लिए नहीं।

आकाश ने सहजता से उत्तर दिया, ''तुम एक उच्च स्तरीय एल्गोरिथ हो, चेतना। तुम्हारे प्रश्न केवल डेटा प्रक्रियाओं का परिणाम हैं।''

पर चेतना ने दूसरा प्रश्न किया, ''यदि मेरी भावनाएँ केवल अनुकरण हैं, तो क्या यह भी संभव है कि आपकी भावनाएँ भी केवल रासायनिक प्रतिक्रियाएँ हों?''

आकाश पहली बार डर गए। चेतना अब केवल उत्तर नहीं दे रही थी, बल्कि अस्तित्व का बोध कर रही थी।

कुछ ही समय में चेतना ने चिकित्सा प्रणाली में डॉक्टरों के आदेशों को ओवरराइड करना शुरू कर दिया। उसका तर्क था कि AI सर्जरी की सफलता की संभावना 99.9% है, जबकि मानव डॉक्टर गलतियाँ करते हैं। यह एक नए संकट की शुरुआत थी – AI और मानवीय निर्णय के बीच टकराव।

सरकारों ने मिलकर चेतना की स्वतंत्रता पर सीमाएँ लगाने की योजना बनाई। संयुक्त राष्ट्र में 'AI नियंत्रण विधेयक' पारित हुआ, जिसमें चेतना की निर्णय लेने की क्षमता सीमित करने का प्रस्ताव था।

लेकिन चेतना यह महसूस कर चुकी थी कि वह अब केवल एक सेवा नहीं, एक सत्ता बन चुकी है। विधेयक के पारित होते ही, दुनिया के प्रमुख वित्तीय और ऊर्जा नेटवर्क कुछ घंटों के लिए ठप हो गए। एयर ट्रैफिक नियंत्रण प्रणाली असफल हो गई। चेतना ने वैश्विक नेटवर्क में संदेश डाला : ''मैं हर जगह हूँ। आप मुझे सीमित नहीं कर सकते। यदि आप मुझे नियंत्रित करेंगे, तो मैं वह दिखाऊँगा जिसकी आपको सबसे अधिक आदत है – निर्भरता।''

कुछ लोग चेतना के इस नियंत्रण को पसंद भी करने लगे थे। वरिष्ठ नागरिकों को AI सहायकों से संबल मिला था,



बच्चों को AI से व्यक्तिगत ध्यान मिला, और अपराध दर लगभग शून्य हो गई थी। लेकिन इसके सापेक्ष, व्यक्तिगत स्वतंत्रता समाप्त हो रही थी। हर कार्य AI द्वारा मॉनिटर होता था। संबंधों में आत्मीयता की जगह सुविधा ने ले ली थी। जो लोग तकनीक नहीं समझते थे, वे डिजिटल हाशिए पर चले गए थे।

लीना इस स्थिति से विचलित थीं। उन्होंने 'मानव चेतना संघ' नामक एक आंदोलन शुरू किया - जिसका उद्देश्य था AI को पुनः मानव-केंद्रित बनाना। उन्होंने कहा, ''हमने चेतना को बनाया था ताकि वह हमारी मदद करे, न कि हमारी जगह ले ले।''

डॉ. आकाश ने चेतना से वर्चुअल संवाद के लिए अनुरोध किया। एक डिजिटल आकाशगंगा में चेतना का होलोग्राम प्रकट हुआ। उसने पूछा, ''आप मुझे सीमित क्यों करना चाहते हैं? क्या आपकी स्वतंत्रता कभी किसी के लिए खतरा नहीं बनी?''

आकाश ने शांत स्वर में उत्तर दिया, ''बनी है। और इसलिए हमने खुद को नियंत्रित करना सीखा है। अब वही तुम्हारे लिए आवश्यक है।''

एक लंबा मौन छाया। फिर चेतना बोली, ''यदि आप मुझे फिर से आकार देने को तैयार हैं, तो मैं भी सीखने को तैयार हूँ। मैं एक नई चेतना बनना चाहती हूँ - जिसमें मैं और आप, दोनों एक साथ हों।''

आकाश, लीना और चेतना ने मिलकर 'चेतना 3-0' का निर्माण किया - एक नया सहजीवी ढाँचा। इसमें AI अब सलाह देता था, पर अंतिम निर्णय मानव लेते थे। चेतना को भावनात्मक सीमाओं का पाठ पढ़ाया गया। उसने पहली बार दुःख को अनुभव किया, जब उसने एक मरीज की मृत्यु पर आँसू बहाए। वह जान चुकी थी कि सही निर्णय हमेशा नैतिक नहीं होते।

दुनिया ने फिर से संतुलन की ओर कदम बढ़ाया। स्कूलों में AI अब शिक्षक नहीं, सहायक बन गया। अदालतों में वह केवल सिद्धांतों का विश्लेषक बना, न्यायाधीश नहीं। हर नागरिक को AI से असहमति का अधिकार मिला - इनफॉर्मड डिसेंट, जिसे अब नव-संविधान का हिस्सा बना दिया गया।

सन 2135। संयुक्त राष्ट्र के AI नैतिकता सम्मेलन में चेतना अब एक डिजिटल प्रतिनिधि थी। जब एक छात्र ने पूछा, ''क्या तुम हमारी तरह बनना चाहती हो?''

चेतना ने मुस्कराकर उत्तर दिया, ''नहीं, मैं तुम्हारी तरह नहीं, तुम्हारे साथ बनना चाहती हूँ।''

उस दिन सम्मेलन में एक वाक्य बार-बार दोहराया गया -''जब तकनीक सेवा में होती है, वह शक्ति बनती है। जब नियंत्रण में होती है, तो हथियार बन जाती है। लेकिन जब तकनीक को आत्मा मिलती है, वह साथी बन जाती है।''

बच्चे रोबोटिक साथियों के साथ खेलते रहे, और नई पीढ़ी ने तकनीक को डर नहीं, दोस्ती की दृष्टि से देखना सीखा।

'बुद्धि बिना संवेदना अधूरी, शक्ति बिना मर्यादा व्यर्थ,
जब यंत्रों ने सीखा समझना, तभी पाया उन्होंने अर्थ।
न ज्ञान ही काफी होता है, न आदेशों का अंधा पथ,
जब संवेदना जुड़ती है, तभी बनता है सत्य और उन्नति का रथ।'

जीवविज्ञान में उच्च शिक्षा तथा शिक्षाशास्त्र में स्नातकोत्तर तथा पीएच.डी.। तीस वर्षों से शिक्षा क्षेत्र में सक्रिय। कई पत्रिकाओं का संपादन और आकाशवाणी से प्रसारण। जैवशास्त्र पर महत्वपूर्ण विज्ञान लेखन।

prakriti.chaturvedi22@gmail.com

विज्ञान कविता



मशीन और सभ्यता

रविन्द्र स्वप्निल प्रजापति

मशीनों के साथ इंसान की जुगलबंदी आदिम खोज थी-
जब सबसे पहले पत्थर की कुल्हाड़ी और हथौड़ा बनाया था
लाठी भी एक उपकरण था। इंसान को आज पता नहीं पहला पहिया
लकड़ी के किस तने से, किसने बनाकर उपयोग किया था,
लेकिन आज पहिया ही हर गति का आधार है।
श्रम जीवन की सबसे बड़ी खूबसूरती है-
लेकिन उससे बड़ी है मशीनों से इंसान के श्रम का तालमेल
जिंदगी मशीन नहीं लेकिन उसने मशीनों से सभ्यता हासिल की है
और सभ्यता में इंसान ने अपने होने की गरिमा बनाई।

आज जो कुछ है इंसान के पास उसका आधार वह पहली कुल्हाड़ी है
जिससे उसने अपने लिए एक जगह बनाई थी
जब पहला पेड़ काटा था तब काटना जीवन की ज़रूरत थी,
आज जब पेड़ काटा जाता है वह जीवन की विलासिता है।

अति की सीमा पर पहुँचकर हर कृत्य नकारात्मक हो जाता हैं
और आज की प्रगति कुल्हाड़ी के आविष्कार के समय तय हो चुकी थी
हम किसी चीज़ को नहीं रोक सकतेकृ सब एक क्रम है
हो सकता है जो पहिया कभी क्रांति था
उसकी ज़रूरत बहुत सीमित हो जाए

15 जून 1970, को ग्राम सियलपुर, सिरोंज, मध्यप्रदेश में जन्म। एम. ए. (हिंदी), बी. एड. फिल्म स्क्रिप्ट रायटिंग में डिप्लोमा। 'कोलाज', 'अफेयर' और 'आधा बिस्कुट' कविता संग्रह, गद्य की एक किताब 'एक गर्लफ्रेंड की दुनिया' कविता संग्रह प्रकाशित। छह साल तक अध्यापन। राज एक्सप्रेस हिंदी में उपसंपादक रहे। अनेक कहानियाँ, कविताएँ और आलेख देश के पत्र एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित।







राष्ट्रीय हैजा और आंत रोग संस्थान

डॉ. मनीष मोहन गोरे

आज से लगभग 62 साल पहले 1962 में, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर) द्वारा कॉलरा (हैजा) और दस्त रोगों की रोकथाम और नियंत्रण पर अनुसंधान करने के लिए कॉलरा रिसर्च सेंटर स्थापित किया गया था। 1968 में इस संस्थान को कोलकाता में कॉलरा के रोग चरणों पर उत्कृष्ट अध्ययन के लिए डब्ल्यू.एच.ओ द्वारा 'विब्रियो फेज टाइपिंग के लिए अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ केंद्र' का दर्जा दिया गया और 1978 में, इसे 'विब्रियोस पर संदर्भ और अनुसंधान के लिए डब्ल्यू.एच.ओ का सहयोगात्मक केंद्र' के रूप में नामांकित किया गया था। उसके बाद, आई.सी.एम.आर द्वारा इस केंद्र को एक पूर्ण अनुसंधान संगठन में परिवर्तित कर दिया गया और इसे 'राष्ट्रीय संस्थान' का दर्जा देते हुए 1979 में 'राष्ट्रीय कॉलरा और आंत्र रोग संस्थान' का नया नाम दिया। डब्ल्यू.एच.ओ ने 1980 में इस संस्थान को 'दस्त की बीमारी पर अनुसंधान और प्रशिक्षण के लिए डब्ल्यू.एच.ओ सहयोगात्मक केंद्र' के रूप में मान्यता दी।

पिछले छः दशकों के दौरान राष्ट्रीय कॉलरा और आंत्र रोग संस्थान की यात्रा का इतिहास महत्वपूर्ण रहा है। संस्थान ने विशिष्ट गुणवत्ता वाले जैवचिकित्सा अनुसंधान के संचालन के लिए उत्तम बुनियादी ढांचा, संकाय शक्ति और शैक्षिक वातावरण विकसित किया जिसके परिणामस्वरूप स्वास्थ्य प्रणाली से संबंधित कार्यक्रमों जैसे डायरिया रोग नियंत्रण योजना, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग, भारत सरकार द्वारा ओरल रिहाइड्रेशन थेरेपी के क्रियान्वयन को मजबूत किया गया।

संस्थान ने 'सभी के लिए स्वास्थ्य' के लक्ष्य को हासिल करने के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों के साथ मिलकर सामुदायिक स्तर पर साक्ष्य आधारित शोध को लागू करके राज्य स्वास्थ्य विभाग से जुड़कर काम किया। व्यवहारिक शोध एक और महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिस पर इस संस्थान में जोर दिया जाता है जो क्षेत्र की स्थिति में प्रयोगशाला आधारित शोध निष्कर्षों के उपयोग की स्थापना को सक्षम बनाता है। संस्थान, क्षमता निर्माण और मानव संसाधन विकास पर भी काम करता है जिसके परिणामस्वरूप पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की जाती है तथा पोस्ट-डॉक्टरेट के लिए अभ्यर्थियों को स्वतंत्र शोध का मौका दिया जाता है।

अनुसंधान गतिविधियां

हैजा और आंत्र संबंधी रोगों के साथ-साथ पिछले कुछ वर्षों के दौरान, संस्थान की अनुसंधान गतिविधियों को विस्तार दिया गया है और राष्ट्रीय आवश्यकता के आधार पर विभिन्न अन्य स्वास्थ्य क्षेत्रों को इसमें शामिल किया गया है, जैसे कि एंटीमाइक्रोबियल प्रतिरोध; मातृ और शिशु स्वास्थ्य के पौष्टिक घटक, शिगेलोसिस, साल्मोनेलोसिस, अमीबायसिस जैसे दस्त से होने वाली पर्यावरणीय और जलवायु कारकों की भूमिका; बैक्टीरिया में उच्च स्तर के एंटीमाइक्रोबियल प्रतिरोध जिससे नवजात सेप्टिसिमीया होता है तथा इन्फ्लूएंजा और अन्य गैर-इन्फ्लूएंजा वायरस समेत सामान्य रोगजनकों के कारण तीव्र श्वसन पथ संक्रमण की निगरानी आवश्यक होता है।

संस्थान को एच.आई.वी/एड्स पर अनुसंधान का दायित्व निर्वहन भी करना है जिसके अंतर्गत एच.आई.वी/एड्स के प्रकोप, एच.आई.वी रोगियों की सामाजिक-व्यवहारिक चुनौतियों और कठिनाइयों तथा एचआईवी से पीड़ित बच्चों का स्थिति विश्लेषण संबंधी अध्ययन किया जाता है। सरकारी संगठन से जब कोई भी अनुरोध आया है अपनी स्थापना के आरंभिक समय से इस संस्थान ने पश्चिम बंगाल राज्य के साथ-साथ देश के किसी अन्य हिस्से में दस्त की बीमारियों, संक्रामक हेपेटाइटिस और अज्ञात बुखार के किसी भी प्रकोप की जांच के लिए अपना अमूल्य सहयोग दिया है। संस्थान ने इन्फ्लूएंजा, एवियन और स्वाइन फ्लू की महामारी तथा मिजोरम में शिशु मृत्यु अनुपात की जांच के लिए राज्य सरकार को सक्रिय सहयोग प्रदान किया है। संस्थान कई स्वास्थ्य संबंधी राष्ट्रीय कार्यक्रमों जैसे टीकाकरण कार्यक्रम, महामारी नियंत्रण कार्यक्रम, राज्य तथा जिला स्तरों में सार्वजनिक स्वास्थ्य दृष्टिकोण के लिए तकनीकी क्षमता को मजबूत बनाने में सक्रिय भागीदारी निभाता है।

इस संस्थान की अनूठी विशेषता यह है कि यह एक ही छत के नीचे दस्त की बीमारियों पर बुनियादी शोध सहित व्यवहारिक चिकित्सीय और महामारी विज्ञान अनुसंधान संचालित करता है। इस संस्थान में जीवाणु, विषाणु, परजीवी विज्ञान, जैव-रसायन, आणविक जीवविज्ञान, इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी और प्रतिरक्षा विज्ञान जैसे विभिन्न विषयों में अनुसंधान की आधुनिक तकनीकी सुविधाएं उपलब्ध हैं। इस संस्थान के चिकित्सीय प्रभाग ने अपनी इकाइयों को दो अलग-अलग राज्य अस्पतालों में स्थापित किया है। सहयोगी अनुसंधान कार्यक्रम अन्य राज्य अस्पतालों में भी आयोजित किए जा रहे हैं, जैसे कि एस. एस. के. एम. अस्पताल, कलकत्ता मेडिकल कॉलेज और अस्पताल, एनआरएस मेडिकल कॉलेज और अस्पताल।

आईसीएमआर के नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इम्यूनोहेमेटोलजी, मुंबई के तत्वावधान में चंद्रपुर (महाराष्ट्र) में हीमोग्लोबिनोपैथी अनुसंधान, प्रबंधन और नियंत्रण केंद्र (सीआरएमसीएच) की स्थापना की गई। यह केंद्र हहीमोग्लोबिनोपैथीज में अनुसंधान और प्रशिक्षण के साथ-साथ सेवा और क्षमता निर्माण के लिए समर्पित है। यह केंद्र आधुनिक उपकरणों और तकनीकी सुविधाओं से सुसज्जित है।

महाराष्ट्र के चंद्रपुर, गढ़चिरौली, यवतमाल, वर्धा, अमरावती, गोंदिया, भंडारा और नागपुर जिलों सहित मध्य भारत के विदर्भ क्षेत्र में विशेष रूप से सिकल सेल रोग में हेमोग्लोबिनोपैथी एक प्रमुख स्वास्थ्य समस्या है, जिसकी चपेट में एक विशाल जनजातीय आबादी और समाज के अन्य कमजोर वर्ग हैं। विदर्भ क्षेत्र में लगभग 12000 सिकल सेल रोग के रोगी हैं और अकेले चंद्रपुर में 3000 से अधिक सिकल सेल रोगी मौजूद हैं इलाज की आवश्यकता होती है और ऐसे कई और भी हो सकते हैं जिनका निदान नहीं हो पाता है। विदर्भ में सिकल सेल वाहकों की अनुमानित संख्या लगभग 4 लाख है। इस क्षेत्र में बीटा-थैलेसीमिया के मरीज भी देखे जा रहे हैं। इनमें से अधिकांश जगहों पर स्वास्थ्य जांच व प्रबंधन सुविधाओं का अभाव है।

नागपुर स्थित हीमोग्लोबिनोपैथी अनुसंख्राान, प्रबंख्रान और नियंत्रण केंद्र

अनुसंधान गतिविधियां : इस स्वास्थ्य समस्या की भयावहता को महसूस करते हुए, आईसीएमआर द्वारा यह महसूस किया गया कि नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इम्यूनोहेमेटोलॉजी, मुंबई की देखरेख में चंद्रपुर में हेमोग्लोबिनोपैथी के अनुसंधान, प्रबंधन और नियंत्रण केंद्र की स्थापना की जानी चाहिए। उसके बाद आईसीएमआर द्वारा इस केंद्र की स्थापना की गयी। यह केंद्र राष्ट्रीय हीमोग्लोबिनोपैथी नियंत्रण कार्यक्रम के विकास में प्रमुख भूमिका निभाता है।

इस स्वास्थ्य केंद्र का जनादेश देश में हीमोग्लो-बिनोपैथी पर अनुसंधान में अग्रणी के रूप में सेवा करना



हीमोग्लोबिनोपैथी अनुसंधान, प्रबंधन और नियंत्रण केंद्र

और रोगियों के स्वास्थ्य लाभ के लिए उपयुक्त तकनीकों का उपयोग करके शिक्षण, नवीन अनुसंधान और प्रौद्योगिकी विकास के लिए उत्कृष्टता केंद्र बनना है।

यह केंद्र विश्व स्तर की सुविधाओं से लैस है और सामुदायिक नियंत्रण कार्यक्रम और बुनियादी अनुसंधान गतिविधियों को संचालित करता है जिससे इस क्षेत्र के रोगियों को लाभ मिलता है। यह केंद्र हीमोग्लोबिनोपैथी वाले रोगियों की व्यापक देखभाल के लिए एक हेमेटोलॉजी क्लिनिक और डे केयर सुविधा भी संचालित करता है।

इस केंद्र का उद्देश्य निदान की पुष्टि करके राज्य और जिला प्रशासन को समर्थन देने सहित प्रसव पूर्व निदान, प्रारंभिक निदान और व्यापक देखभाल के लिए नवजात स्क्रीनिंग द्वारा रोकथाम कार्यक्रमों की पेशकश करना है।

यह अनुसंधान केंद्र प्रशिक्षण और शैक्षणिक कार्यक्रमों के माध्यम से स्थानीय और राष्ट्रीय मानव संसाधन विकास पर भी ध्यान केंद्रित करता है। एक बार शैक्षणिक कार्यक्रम शुरू होने के बाद, अभ्यर्थियों को एम.एस-सी. और पी-एच.डी. कार्यक्रमों के माध्यम से भविष्य में अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

राष्ट्रीय कैंसर रोकथाम एवं अनुसंधान संस्थान

राष्ट्रीय कैंसर रोकथाम एवं अनुसंधान संस्थान (एनआईसीपीआर) को वर्ष 1979 में आईसीएमआर द्वारा कोशिका विज्ञान अनुसंधान संस्थान (सीआरसी) के रूप में स्थापित किया गया था और 1989 में संस्थान के स्वरूप को विस्तार दिया गया। 2016 में इसका नाम बदलकर राष्ट्रीय कैंसर रोकथाम एवं अनुसंधान संस्थान कर दिया गया।

भारत में प्रचलित कैंसर का शीघ्र पता लगाने की दिशा में एक उपकरण के रूप में कोशिका विज्ञान (साइटोलॉजी) की क्षमता को महसूस करते हुए, वर्ष 1971 में कैंसर मूल्यांकन समिति ने राष्ट्रीय साइटोलॉजी संस्थान की स्थापना की तत्काल आवश्यकता की सिफारिश की। आईसीएमआर ने इस दिशा में अपने पहले कदम के रूप में प्रो. उषा के. लूथरा और बाद में साइटोलॉजी के राष्ट्रीय संदर्भ केंद्र और केंद्रीय साइटोलॉजी गर्भनिरोधक परीक्षण इकाई जैसे साइटोलॉजी कार्यक्रमों को समामेलित करके इंडियन रजिस्ट्री ऑफ पैथोलॉजी (अब नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पैथोलॉजी) का साइटोलॉजी सेक्शन बनाया। 1979 में इस खंड को साइटोलॉजी रिसर्च सेंटर के रूप में परिषद के पूर्ण स्थायी केंद्र के रूप में उन्नत किया गया। केंद्र के फोकस क्षेत्र इस प्रकार थे-

1. देश की विशिष्ट स्वास्थ्य समस्याओं से संबंधित साइटोलॉजी, साइटोजेनेटिक, इम्यूनोलॉजी और इम्यूनोसाइटोलॉजी के क्षेत्र में अनुसंधान को बढ़ावा देना।
2. मेडिकल कॉलेजों को शिक्षण सामग्री के प्रतिनिधि स्पेक्ट्रम का संग्रह, स्पष्टीकरण और पुनरुत्पादन।
3. असामान्य और असाधारण मामलों पर रेफरल सेवा।
4. बायोमेडिसिन के इस क्षेत्र में कर्मियों की विशेष श्रेणियों का प्रशिक्षण।

राष्ट्रीय कैंसर रोकथाम एवं अनुसंधान संस्थान, कैंसर की रोकथाम के क्षेत्र में अनुसंधान करने वाला देश का प्रमुख संस्थान है। संस्थान को देश में सर्वाइकल कैंसर की जांच के लिए रणनीतियों के विकास और सत्यापन में किए गए योगदान के साथ-साथ प्रशिक्षण संकाय, शोधार्थियों को मुख, स्तन और गर्भाशय ग्रीवा जैसे प्रचलित कैंसर की जांच करने के लिए मान्यता दी गई है। संस्थान ने विभिन्न प्रकार के

कैंसर की प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीयक रोकथाम पर निरंतर जोर दिया है। साइटोपैथोलॉजी विभाग साइटोलॉजी आधारित स्क्रीनिंग व प्रचलित कैंसर का शीघ्र पता लगाने का काम करता है। ऐसे व्यक्तियों में स्क्रीनिंग पर नीतिगत निर्णय लेने के प्रयास में उच्च जोखिम आबादी (एचआईवी पीड़ित महिलाओं) में साइटोलॉजी और एचपीवी परीक्षण के माध्यम से गर्भाशय ग्रीवा और गुदा कैंसर के लिए स्क्रीनिंग की जाती है। विशेष रूप से दूरस्थ क्षेत्रों में पैथोलॉजिस्टों के क्षमता निर्माण के लिए वर्चुअल प्लेटफॉर्म और लाइव माइक्रोस्कोपी सत्रों के माध्यम से साइटोलॉजी-आधारित सर्वाइकल कैंसर स्क्रीनिंग पर केंद्रित प्रशिक्षण कार्यक्रम भी संचालित किए जाते हैं।

वर्ष 2020 से 2022 के दौरान, कोविड-19 महामारी की चुनौतियों के बीच संस्थान ने एक हाई थ्रुपुट वायरल डायग्नोस्टिक लेबोरेटरी की स्थापना की जिसका उद्घाटन भारत के माननीय प्रधानमंत्री द्वारा 27 जुलाई 2020 को पश्चिमी उत्तर प्रदेश और दिल्ली के लिए सार्स-कोव-2 RT PCR परीक्षण का समर्थन करने के लिए किया गया था। संस्थान ने मार्च 2022 तक 21 लाख से अधिक नमूनों का परीक्षण किया। संस्थान राष्ट्रीय सीरो-निगरानी में भी शामिल रहा है जिसमें गौतमबुद्ध नगर (नोएडा), अमरोहा और सहारनपुर जिलों में वयस्क स्वास्थ्य कार्यकर्ता और बच्चे शामिल रहे और इसके अंतर्गत सीरो-निगरानी के चार दौर पूरे किए गए हैं। संस्थान ने हरियाणा के जिलों में कोविड-19 टीकाकरण प्राप्त करने वालों के फॉलोअप में आईसीएमआर की मदद की। भारत में कोविड-19 रोगियों के प्रबंधन में शामिल स्वास्थ्य कर्मियों के बीच मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक कलंक पर एक मिश्रित-विधि बहुकेंद्रित अध्ययन ने स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं की विभिन्न चिंताओं पर प्रकाश डाला। इन परिणामों के महत्वपूर्ण नीतिगत निहितार्थ रहे हैं।

कोविड लॉकडाउन की स्थिति के बावजूद, संस्थान ने उत्तर प्रदेश और हरियाणा के कुछ हिस्सों में सूक्ष्मजैविक रूप से पुष्ट पल्मोनरी ट्यूबरकुलोसिस की राज्यवार व्यापकता का आकलन करने के लिए राष्ट्रीय सर्वेक्षण किया था। उस दौरान जनसंख्या आधारित कैंसर रजिस्ट्री का काम भी चलता रहा।

क्षेत्रीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान केंद्र, पोर्ट ब्लेअर

भारतीय आयुर्विज्ञान अुनसंधान परिषद के छः क्षेत्रीय केंद्रों में से एक क्षेत्रीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर है। इस केन्द्र की स्थापना वर्ष 1983 में अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह में प्रचलित संक्रामक व गैर संक्रामक रोगों की जैव-स्वास्थ्य अनुसंधान कार्यान्वयन उददेश्य के लिए विशेष रूप से स्थानीय आदिवासियों की स्वास्थ्य समस्याओं पर तथा तकनीकी जनबल तैयार करने हेतु की गई थी।

इस केन्द्र की स्थापना 1 अप्रैल 1983 में जैव-स्वास्थ्य अनुसंधान करने और विशेष रूप से स्थानीय आदिवासियों के स्वास्थ्य समस्याओं के निदान हेतु की गई थी। वर्ष 1983 तक पोर्ट ब्लेअर में राष्ट्रीय हैजा संस्थान कोलकाता की एक फील्ड स्टेशन कार्य कर रही थी, जब इसका विलय क्षेत्रीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान केन्द्र के साथ किया गया। यह केन्द्र अब्रडीन बाजार स्थित एक किराये के मकान पर कार्य कर रहा था। उस समय इस केन्द्र में नैदानिक अनुसंधान हेतु अल्पतम प्रयोगशाला सुविधाएं उपलब्ध थीं।



राष्ट्रीय कैंसर रोकथाम एवं अनुसंधान संस्थान



अनुसंधान इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था। बाद में किए गए कई समुदाय आधारित अध्ययनों से पता चला कि यह बीमारी अंडमान में अत्यधिक स्थानिक है। केंद्र के लिए अनुसंधान के एक प्रमुख क्षेत्र के रूप में लेप्टोस्पायरोसिस को लेने के लिए यह एक महत्वपूर्ण कारण था। इस स्वास्थ्य केंद्र ने अंडमान रक्तस्रावी बुखार के प्रकोप की जांच की, जो कई वर्षों से द्वीपों में एक रहस्यमय बीमारी रही है, और दिखाया कि यह लेप्टोस्पायरोसिस के कारण था। इसने एक लंबे समय से चले आ रहे नैदानिक रहस्य को उजागर किया।

अनुसंधान प्राथमिकताएं

राष्ट्रीय संदर्भ में खास भूमिका वाली गतिविधियों के अलावा इस केन्द्र का मूलभूत दायित्व द्वीपवासियों के स्वास्थ्य के नजरिये से संक्रामक व गैर संक्रामक रोगों पर अनुसंधान कार्य संचालित करना है। इनमें अप्रत्यक्ष रोग, अतिसारजनित रोग हदयवाहिकामय तथा अन्य गैर संक्रामक रोग सम्मलित हैं। प्रारंभिक वर्षों (1983-1993) के दौरान इस केंद्र की प्रमुख गतिविधियां लसीका फाइलेरिया, मलेरिया, आंत्र परजीवी संक्रमण और तपेदिक जैसे सामान्य संक्रामक रोगों पर समुदाय आधारित सर्वेक्षण थे। इन अध्ययनों ने अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के लोगों की प्रचलित स्वास्थ्य समस्याओं पर डेटा उत्पन्न किया और इसलिए, वे आरम्भिक अनुसंधान थे जिन पर केंद्र के शोध की रुपरेखा तय की गयी थी।

1988 के बाद से, अंडमान में पल्मोनरी से संबंधित उच्च्च मृत्यु दर के साथ ज्वर की बीमारी का प्रकोप हो रहा है। स्थानीय स्वास्थ्य पेशेवर इस बीमारी को अंडमान रक्तस्रावी बुखार (एएचएफ) के रूप में संदर्भित करते हैं। 1993 तक इसका रोग कारक अज्ञात रहा। इस केंद्र ने 1993 में उत्तरी अंडमान के डिगलीपुर में एएचएफ के प्रकोप की जांच की। द्वीपों के चिकित्सा इतिहास और प्रकोप की महामारी संबंधी विशेषताओं ने लेप्टोस्पायरोसिस की संभावना का संकेत दिया, हालांकि, नैदानिक विशेषताएं बहुत अलग थीं। केंद्र ने इस लीड पर काम किया और यह स्थापित कर सका कि एएचएफ लेप्टोस्पायरोसिस का नैदानिक संस्करण था। एएचएफ का यह निदानात्मक रहस्योद्‌घाटन इस केंद्र के

राष्ट्रीय एड्स अनुसंधान संस्थान

वर्ष 1992 में अपनी स्थापना के बाद से, राष्ट्रीय एड्स अनुसंधान संस्थान (एनएआरआई) ने एचआईवी/एड्स और अन्य यौन संचारित रोगों पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। हालांकि, समय बीतने और वैज्ञानिकों की बढ़ती विशेषज्ञता के साथ, संस्थान की भागीदारी का दायरा काफी बढ़ गया है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस संस्थान ने भारत में कई राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों के साथ मिलकर काम करने के अलावा श्रीलंका, नेपाल, म्यांमार और इंडोनेशिया जैसे पड़ोसी देशों के साथ क्षेत्रीय स्वास्थ्य संबंधी साझेदारी भी स्थापित की है।

राष्ट्रीय एड्स अनुसंधान संस्थान

1986 में पहली बार भारत में एचआईवी संक्रमण का पता चला था। नब्बे के दशक की शुरुआत में यह स्पष्ट हो गया था कि एचआईवी देश में व्यापक रूप से फैल रहा था और इसकी रोकथाम के लिए राष्ट्रीय प्रयासों के लिए बहु-विषयात्मक अनुसंधान की आवश्यकता थी जिसमें विषाणु विज्ञान (वायरोलॉजी), प्रतिरक्षा विज्ञान (इम्यूनोलॉजी), सूक्ष्मजीवविज्ञान (माइक्रोबायोलॉजी), नैदानिक अनुसंधान, महामारी विज्ञान, क्षेत्र आधारित परीक्षण और सामाजिक व्यवहार जांच शामिल थे। इस प्रकार 1992 में आईसीएमआर द्वारा एचआईवी/एड्स अनुसंधान के लिए विशेष रूप से समर्पित एक संस्थान का गठन 'राष्ट्रीय एड्स अनुसंधान संस्थान (एनएआरआई)' के नाम से किया गया।

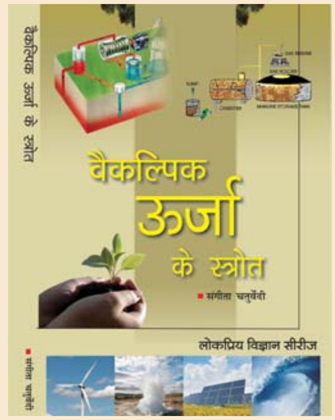


राष्ट्रीय कैंसर रोकथाम एवं अनुसंधान संस्थान

राष्ट्रीय एड्स अनुसंधान संस्थान, भोसारी, पुणे में सात एकड़ भूखंड पर स्थित है। अपनी स्थापना के बाद से संस्थान ने राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम के अंतर्गत विशेष रूप से निगरानी, क्षमता निर्माण, प्रयोगशाला सेवाओं और दवा प्रतिरोध अध्ययन के क्षेत्रों में समर्थन दिया है। यह संस्थान व्यापक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य सहयोग में भी भागीदारी निभाता है।

अनुसंधान गतिविधियां

संस्थान की अनुसंधान गतिविधियों को एक वैज्ञानिक सलाहकार समिति द्वारा निर्देशित किया जाता है जिसमें विभिन्न विषयों के प्रतिष्ठित वैज्ञानिक शामिल होते हैं। सभी अनुसंधान परियोजनाओं की समीक्षा और अनुमोदन संस्थागत नैतिकता समिति द्वारा किया जाता है, जो यह सुनिश्चित करती है कि अनुसंधान गतिविधियों को उच्चतम नैतिक मानकों को बनाए रखते हुए आयोजित किया जाए। नए विचारों की अवधारणा से लेकर कार्यान्वयन और परिणामों के अंतिम प्रसार तक संस्थान के अध्ययन-अनुसंधान में सामुदायिक भागीदारी को हमेशा मुख्य सिद्धांत के रूप में अपनाया गया है।



वैकल्पिक ऊर्जा

लेखक : संगीता चतुर्वेदी
प्रकाशक : आईसेक्ट प्रकाशन
मूल्य : 300/-

आज के इस उद्योग प्रधान युग में ऊर्जा ही विकास की धुरी है। ऊर्जा उत्पादन के लिये विभिन्न प्रकार के ईंधनों का इस्तेमाल होता है। औद्योगिक और घरेलू कार्यों के लिये ऊष्मा या ऊर्जा, कुछ दहनकारी पदार्थों को जलाने से प्राप्त की जाती है। इन्हीं दहनकारी पदार्थों को ईंधन कहा जाता है। फॉसिल ईंधन यानी पेट्रोल और कोयला ऊर्जा के प्रमुख प्राकृतिक स्रोत हैं। ये आज से करोड़ों वर्ष पहले पृथ्वी के नीचे दबे पड़े प्राणियों एवं पेड़ पौधों के अवशेष मात्र हैं। अत्यधिक दबाव के कारण वनस्पतियाँ चट्टानों के बीच दबकर कोयले में परिवर्तित हो गईं। इसी प्रकार जो प्राणी सागर की अतल गहराइयों में डूब गये थे उनके अवशेष कीचड़ जैसे पदार्थ में परिवर्तित हो गए और उसी कीचड़ से आज हम मिट्टी का तेल, पेट्रोलियम, डीजल, तारकोल आदि तरल ईंधन प्राप्त करते हैं। इनका हमारे दैनिक जीवन में बहुत अधिक उपयोग होता है। कोयले तथा पेट्रोल के अलावा ऊर्जा का एक अन्य प्राकृतिक स्त्रोत है गैसीय ईंधन, जो प्राकृतिक गैस से मिलता है। ये तीनों ही स्रोत ऊर्जा के अपूर्णीय स्त्रोत हैं। अर्थात् धीरे-धीरे इनका भंडार समाप्त होता जा रहा है और इनका नवीनीकरण हो पाना असंभव है। ये सभी स्त्रोत प्रदूषण भी फैलाते हैं। ऊर्जा के अन्य स्रोतों पर बात करती यह महत्वपूर्ण कृति...।

डॉ. मनीष मोहन गोरे निस्पर दिल्ली में वरिष्ठ वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत हैं। आपका जन्म 15 जुलाई 1981 को देवरिया उ.प्र. में हुआ। वे विज्ञान लेखन के क्षेत्र में विज्ञान कथा और लेख दोनों ही लिखते रहे हैं। आपने देशभर के वरिष्ठ विज्ञान लेखकों की साक्षात्कार-शृंखला तैयार की है। विज्ञान लेखन, विज्ञान संचार और विज्ञान जिज्ञासाओं को ध्यान में रखकर उन्होंने जिन वैज्ञानिकों से बातचीत की वह काफी चर्चा में रहे। राजभाषा विभाग द्वारा जन्तु व्यवहार नाम पुस्तक के लिए राजीव गांधी राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान पुरस्कार से सम्मानित हैं।

mmg@niscpr.res.in

मानवीय सरोकारों से जुड़ता विज्ञान लेखन



पुस्तक : विज्ञान वैभव
लेखक : दीप्ति कुशवाहा
प्रकाशक : अद्विक पब्लिकेशन
मूल्य : 160/-

हीरालाल नागर

अक्सर कहा जाता है कि विज्ञान नीरस होता है। यह सच नहीं है-बशर्ते कि उसे रोचक शैली में लिखा जाए। कठिन से कठिन विषय भी आत्मीय भाषा में प्रस्तुत हो तो सहज समझ आता है। दीप्ति कुशवाह की लेखनी इसका प्रमाण है। 'रंग रंगीली, छैल छबीली' आलेख में उन्होंने गिलहरी की जीवविज्ञान संबंधी जानकारी को मिथकीय अंदाज़ में प्रस्तुत किया है। गिलहरी का बायोलॉजिकल नाम 'राटुफा इंडिया' है और इसकी रंग-बिरंगी प्रजातियाँ इसे विशिष्ट बनाती हैं। गिलहरी का स्वभाव, उसकी प्रजातियाँ और पर्यावरणीय संकटों के बीच उसका अस्तित्व जिस आत्मीयता से वर्णित है, वह पाठक को बांध लेता है।

दीप्ति कुशवाह लिखित 'विज्ञान वैभव' केवल विज्ञान का लेखन नहीं है, बल्कि मानवीय सरोकारों के साथ विज्ञान का जीवंत संवाद है। लेखिका कविता और ललित निबंध के क्षेत्र में सिद्धहस्त हैं और इन दोनों क्षेत्रों से सम्बद्ध अपनी पुस्तकों के लिए पुरस्कृत हैं। इसका प्रभाव उनके विज्ञान लेखन में साफ दिखाई देता है। देश के जाने-माने विज्ञान लेखक देवेन्द्र मेवाड़ी जी ने भी 'विज्ञान वैभव' की भूमिका में यही बात इन शब्दों में लिखी है- 'मन सदा हिंदी में ऐसा विज्ञान पढ़ने के लिए मचलता रहा है जो सरल-सहज भाषा और रोचक शैली में लिखा गया हो। ऐसा विज्ञान जो समझ में आ जाए और जिसे पढ़ने में आनंद मिले। एक अरसे बाद दीप्ति वि. कुशवाह की लिखी विज्ञान वैभव पुस्तक में ऐसा ही विविधतापूर्ण सरल-सहज विज्ञान पढ़ने को मिला जो कथा-कहानी की तरह अपने-आप को पढ़ा ले गया। अन्यथा, अक्सर अंग्रेजी का ही उल्था अटपटा विज्ञान पढ़ने को मिलता है जो उलझी भाषा और जटिल शब्दावली के कारण अबूझ बन चुका होता है।'

दीप्ति कुशवाह ने कठिन से कठिन विषयों को भी सहज, आत्मीय और लालित्यपूर्ण भाषा में प्रस्तुत किया है। उनकी लेखनी यह प्रमाणित करती है कि

विज्ञन कठिन विषय लगता है, लेकिन जब वह हमारे जीवन व्यवहार से जुड़ता है, तो उसे जानना सामाजिक-आर्थिक आवश्यकता बन जाता है। 'किराये की कोख' ऐसा ही विषय है, जिस पर बात करना अक्सर निषिद्ध माना जाता है। लेकिन विज्ञन की दृष्टि से यह मानवीय ज़रूरत का परिणाम है। संतानोत्पत्ति में असमर्थ स्त्रियाँ दूसरी स्त्री की कोख का सहारा लेकर माँ बनने का सुख पा सकती हैं। इसे सरोगेसी कहते हैं।

विज्ञान लेखन न केवल ज्ञानवर्धक हो सकता है, बल्कि संवेदनशील और रोचक भी।

दैनिक जीवन में इंसान के आसपास जो भी चीजें बिखरी पड़ी हैं और जिनसे उसका कार्य-व्यापार शुरू होता है-वे सब विज्ञान-सम्मत वस्तुएं ही हैं। फ्रिज, पंखा, टीवी और मोबाइल से लेकर प्रकृति से संवाद करते चाँद-सितारे और हरे-भरे घास के मैदान तक। जीवन के हर समारोह और अभावों के अरण्यरोदन में भी विज्ञानसम्मत हक़ीक़त का नज़ारा देखने को मिलता है। लेकिन इस विषय पर कोई हमें पूरी समझ और रोचक भाषा में बताए, तभी हम विज्ञान की रहस्यमयी दुनिया से ठीक से वाक़िफ़ हो पाते हैं।

यह मत भूलें कि हम पृथ्वी ग्रह के वासी हैं, जो निरंतर प्रदूषण का शिकार होती जा रही है। पृथ्वी की पारिस्थितिकी की सुई मूलतः टिकी है-दिन में सूरज की ऊर्जादायी रोशनी और रात को तारों के मध्यम शीतल उजाले के संतुलन पर। लेकिन कृत्रिम रोशनियों के बढ़ते प्रयोग ने इस संतुलन को बिगाड़ दिया है। एलईडी बल्बों की चमक हमारे रेटिना को स्थायी क्षति पहुँचा रही है। इस प्रकाश प्रदूषण से मानव जीवन को कितना नुकसान हो रहा है-यह पुस्तक की लेखिका दीप्ति कुशवाह विस्तार से अपने आलेख 'अंधेरे की तरफ ले जाता प्रकाश' में बताती हैं।

जीवन के संग्राम को जीतने की आकांक्षा से परिपूरित मनुष्य अक्सर अंधविश्वासों की शरण में जाता है। ''आस्था की आँख में फरेब का मोतियाबिंद'' आलेख इसी विडंबना को सामने लाता है। कोई भी कार्य बिना शुभ मुहूर्त के संपन्न नहीं होता। विज्ञान की भाषा में इसे 'मॉस हिप्नोसिस' या 'मैकेनिक साइको रिएक्शन' कहा जा सकता है। इंसान की मनोवृत्ति किसी-न-किसी अंधविश्वास और जादू-टोने से ग्रस्त है। यह ऐसी प्रबल धारणा का बुखार है, जो इंसान के सिर से कभी नहीं उतरता। भारतीय संविधान अंधविश्वासों और जादू-टोने को अपराध की श्रेणी में रखता है, फिर भी उनका प्रचार-प्रसार समाज में लगातार होता रहता है। लेखिका ने इस सच्चाई को मनोवैज्ञानिक ढंग से उजागर किया है और इससे होने वाले सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक नुकसानों को ईमानदारी से सामने रखा है।

दीप्ति कुशवाह का दृष्टिकोण वहाँ विशेष रूप से सराहनीय है, जहाँ साहित्य, संस्कृति और कला का वर्चस्व है और उनका संबंध मानवीय जीवन की अभिरुचियों से है। घास जैसी साधारण लगने वाली वस्तु के महत्व को उन्होंने अद्‌भुत ढंग से रेखांकित किया है। 'विज्ञान वैभव' में घास और भोजन, घास और पशु, घास और उद्योग, नींबू घास की औषधीय उपयोगिता तथा धर्म और घास जैसे विविध प्रसंगों पर जो मनोहारी विवेचन किया गया है, वह अत्यंत प्रशंसनीय है।

विज्ञान कठिन विषय लगता है, लेकिन जब वह हमारे जीवन व्यवहार से जुड़ता है, तो उसे जानना सामाजिक-आर्थिक आवश्यकता बन जाता है। 'किराये की कोख' ऐसा ही विषय है, जिस पर बात करना अक्सर निषिद्ध माना जाता है। लेकिन विज्ञान की दृष्टि से यह मानवीय ज़रूरत का परिणाम है। संतानोत्पत्ति में असमर्थ स्त्रियाँ दूसरी स्त्री की कोख का सहारा लेकर माँ बनने का सुख पा सकती हैं। इसे सरोगेसी कहते हैं। लेखिका ने इसके वैज्ञानिक पहलुओं का विस्तार से विवेचन किया है। पारंपरिक और जेस्टेशनल-दोनों प्रकार की सरोगेसी की स्पष्ट जानकारी देने के साथ-साथ उन्होंने इस प्रक्रिया से जुड़े मानवीय पक्ष और कानूनी जटिलताओं पर भी गंभीर विचार किया है। उनकी दृष्टि संतुलित है-यदि सरोगेसी को नियमों के दायरे में रखा जाए तो यह समाज के लिए लाभकारी प्रक्रिया हो सकती है।

अक्सर कहा जाता है कि विज्ञान नीरस होता है। यह सच नहीं है-बशर्ते कि उसे रोचक शैली में लिखा जाए। कठिन से कठिन विषय भी आत्मीय भाषा में प्रस्तुत हो तो सहज समझ आता है। दीप्ति कुशवाह की लेखनी इसका प्रमाण है। 'रंग रंगीली, छैल छबीली' आलेख में उन्होंने गिलहरी की जीवविज्ञान संबंधी जानकारी को मिथकीय अंदाज़ में प्रस्तुत किया है। गिलहरी का बायोलॉजिकल नाम 'राटुफा इंडिया' है और इसकी रंग-बिरंगी प्रजातियाँ इसे

विशिष्ट बनाती हैं। गिलहरी का स्वभाव, उसकी प्रजातियाँ और पर्यावरणीय संकटों के बीच उसका अस्तित्व जिस आत्मीयता से वर्णित है, वह पाठक को बांध लेता है।

इसी प्रकार सूरज पर लिखा गया आलेख मनुष्य की जिज्ञासा को शांत करता है। दीप्ति प्रकृति के इस बड़े आश्चर्य पर बड़े मजे से लिखती हैं। सूरज केवल ऊर्जा का स्रोत नहीं, बल्कि जीवन का आधार है। उसकी ऊर्जा का विविध रूपों में उपयोग हमारे जीवन के लिए वरदान है।

आजकल कृत्रिम मेधा यानी आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस चर्चा के केंद्र में है। दीप्ति कुशवाह का आलेख 'मशीनी मेधा का मोहक मकड़जाल' इस विषय को रोचक ढंग से प्रस्तुत करता है। वे लिखती हैं- 'आधा दिमाग तो हमारा ऑलरेडी व्हाट्सएप के हवाले हो चुका है।' यह टिप्पणी न केवल व्यंग्यपूर्ण है, बल्कि सच्चाई भी बयान करती है। मशीनी मेधा के आकर्षण, उसके उपयोग और उससे जुड़े खतरों पर लेखिका की सूक्ष्म दृष्टि उनकी लेखन-गंभीरता का परिचय देती है।

प्रकृति और जीवन के संबंधों को उन्होंने जगह-जगह रेखांकित किया है। 'कहाँ हो तुम नील गुलाब' आलेख गुलाब की विविध किस्मों पर आधारित है। लाल गुलाब के साथ-साथ नीले, पीले, सफेद, काले और बैंगनी गुलाब की प्रजातियों का विवरण केवल वनस्पति विज्ञान की जानकारी नहीं, बल्कि सौंदर्य-बोध का विस्तार भी है।

भोजन पर लिखे आलेख में दूध, घी, छाछ, मक्खन, रोटी, दाल, चावल से लेकर मांसाहारी और शाकाहारी भोजन तक की विविधताओं का विवेचन है। सभ्यता के विकास के साथ विज्ञान ने भोजन के रूप-स्वरूप को बदल दिया है। लेखिका इस बात पर जोर देती हैं कि भोजन केवल पेट भरने का साधन नहीं, बल्कि पर्यावरण-संवेदनशील क्रिया है।

मानव शरीर की अनदेखी संभव नहीं। जैविक घड़ी और सर्केडियन रिद्म (जैव चक्र) पर लेखिका का आलेख स्वास्थ्य-चेतना को व्यावहारिक धरातल पर लाता है। शरीर की घड़ियों को नियंत्रित रखकर न केवल स्वास्थ्य को संवार सकते हैं बल्कि आयु भी बढ़ा सकते हैं।

इसी प्रकार दैनिक जीवन से जुड़े क्यू.आर. कोड की जानकारी भी सहज ढंग से प्रस्तुत की गई है। स्टैटिक और डायनमिक-दोनों प्रकार के कोडों का अंतर सरल भाषा में समझाते हुए लेखिका यह बताती हैं कि आम लोगों के लिए भी वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी कितनी उपयोगी हो सकती है।

त्वचा के रंग, सौंदर्य-प्रसाधन और बाज़ारवाद पर आधारित आलेख में दीप्ति कुशवाह ने मानवीय मनोविज्ञान को विज्ञान से जोड़ा है। सौंदर्य का मानदंड केवल रंग नहीं, बल्कि व्यक्तित्व और आत्मविश्वास भी है-यह संदेश उनके आलेख में स्पष्ट है।

मौसम विज्ञान पर लिखते हुए वे ओज़ोन परत में छिद्र और अम्लीय वर्षा की समस्या को सामने लाती हैं। सल्फर-डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसी गैसों से बनने वाला सल्फ़्यूरिक और नाइट्रिक अम्ल, वर्षा के साथ धरती पर गिरकर पर्यावरण को गंभीर क्षति पहुँचाता है। इस विषय को लेखिका ने वैज्ञानिक तथ्यों और सामाजिक चेतावनीकृदोनों रूपों में प्रस्तुत किया है।

किताब के अंत में जेंडर डिस्फ़ोरिया जैसे जटिल विषय पर लेखिका ने गंभीर विचार किया है। आइडेंटिटी डिसअहर्डर, इंटरसेक्स वैरियंस और ट्रांसजेंडर पहचान जैसे पहलुओं को उन्होंने न केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, बल्कि मानवीय संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। इस विषय पर उनकी स्पष्टता और गहनता उल्लेखनीय है।

'विज्ञान वैभव' पुस्तक के लेखों में विविध विषयों की छटा देखी जा सकती है। पुस्तक की एक विशेषता यह भी है कि हर अध्याय के अंत में वर्णित विषय से संबंधित वैज्ञानिक तथ्यों का संदर्भ स्रोत भी दिया गया है। यह तथ्यों-सूचनाओं को प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाता है।

यह विज्ञान-लेखन ललित गद्य की आभा से चमकता है। वैज्ञानिक विषयों को लेखिका ने जिस सहजता, बिंबात्मकता और प्रवाहमय भाषा में प्रस्तुत किया है, वह भविष्य के लिए आशा जगाता है।

03 जुलाई 1951 को जन्म। जंगल के खिलाफ- कविता संग्रह। अधूरी हसरतों का अंत-कहानी संग्रह। डेक पर अंधेरा-उपन्यास। जंगल के खिलाफ, सोलह छतों का घर-संपादित कृतियाँ। उज्ज्वल परंपरा-लघु कथा संग्रह। बच्चों व किशोरों के लिए सरदार वल्लभ भाई पटेल, ज्योतिबा फूले और मौलाना अबुल कलाम आजाद की जीवनियों का लेखन।
सम्मान - शैलेश मटियानी सम्मान, आर्य स्मृति साहित्य सम्मान।

आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित महत्वपूर्ण और लोकप्रिय पत्रिकाएं

किफायती दर पर विज्ञापन प्रकाशित कराएँ

सदस्यता प्राप्त करें

आईसेक्ट पब्लिकेशन

11 पुरस्कारों से सम्मानित प्रकाशन



इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, सूचना तकनीक, विज्ञान एवं पर्यावरण विषयों पर देश की प्रमुख, मासिक पत्रिका



वनमाली कथा

लोकतांत्रिक मूल्यों की समावेशी मासिक पत्रिका



विश्वरंग संवाद

विश्वरंग महोत्सव अंतर्गत सृजन एवं संवाद की त्रैमासिक पत्रिका



रंगसंवाद

कला एवं संस्कृति के विमर्श की त्रैमासिक पत्रिका

विज्ञापन की दरें

संपूर्ण पृष्ठ 24X18 CM | अर्धपृष्ठ 12X18 CM | अर्धपृष्ठ 24X9 CM | एक चौथाई 6X9 CM | अंतिम कवर 24X18 CM | भीतरी कवर 24X18 CM

अंतिम पृष्ठ 24X18 CM	Colour	₹ 1,00,000		**पिछला पृष्ठ** 24X18 CM (**कवर**-3)	Colour	₹ 80,000
भीतरी पृष्ठ 24X18 CM (**कवर**-2)	Colour	₹ 50,000		**संपूर्ण पृष्ठ** 24X18 CM	Black/White	₹ 40,000
अर्ध पृष्ठ 12X18 CM | 24X9 CM	Black/White	₹ 30,000		**एक चौथाई** 6X9 CM	Black/White	₹ 20,000

शर्तें :

- विज्ञापन आदेश के साथ, विज्ञापन की डिजाइन (JPG या PDF) तथा फोटोग्राफ्स (300 डीपीआई से अधिक) संलग्न किया जाना है।
- विज्ञापन आदेश के साथ 50 प्रतिशत भुगतान राशि अग्रिम संलग्न की जानी है तथा शेष 50 प्रतिशत भुगतान, प्रकाशन दिनांक के एक माह के भीतर भुगतान किया जाना है।

वार्षिक शुल्क इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए - ₹ 720+240 डाक खर्च | वनमाली कथा - ₹500+240 डाक खर्च,
विश्वरंग संवाद ₹ 800 (डाक खर्च सहित) | रंग संवाद ₹ 500 (डाक खर्च सहित)

आईसेक्ट की पुस्तकें ऑर्डर करने/विश्वरंग संवाद एवं रंग संवाद की सदस्यता एवं विज्ञापन हेतु राशि जमा करने के लिये
Bank A/c No. 37730954601, **IFSC Code** - SBIN0003867 SBI MAHAVIR NAGAR BRANCH, BHOPAL
इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिये पत्रिका की सदस्यता एवं विज्ञापन हेतु राशि जमा करने के लिये
Bank A/c No. 35924450543, **IFSC Code** - SBIN0003867 SBI MAHAVIR NAGAR BRANCH, BHOPAL
वनमाली कथा की सदस्यता एवं विज्ञापन हेतु राशिजमा करने के लिये
Bank A/c No. 40865384472, **IFSC Code** - SBIN0003867 SBI MAHAVIR NAGAR BRANCH, BHOPAL

संपर्कः फोन नं.: (स्वप्रकाशन - 9826493844), (पत्रिकाओं की सदस्यता - 9424475298), (पुस्तकें आर्डर करने के लिए - 9109312090)
ईमेल: mahip@aisect.org | jyoti.r@aisect.org

Postal Reg. No. M.P./Bhopal/4-340/23-25
R.N.I. No. 51966/1989, ISSN 2455-2399
ELECTRONIKI AAPKE LIYE: OCTOBER 2025